Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 6, No. 12, Jan-June, 2020 ISSN : 2394-2878

भारतीय समाज में महिलाओं का ऐतिहासिक एवं सामाजिक विश्लेषण

डॉ0 शक्ति सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
गनपत सहाय पी0जी0 कालेज,
सुलतानपुर उ0प्र0

प्राचीन भारतीय समाज में नारियों को जितने सोपानों से संक्रमित होना पड़ा जितने परिवेशों में परिवर्तित होना पड़ा उतना अन्य किसी को नहीं। नारी का जन्म प्रथमतः पुत्री रूप में होता है। प्राप्त साक्ष्यों से ज्ञात है कि वैदिक काल में पुत्री का बयान पुत्र की भांति ही सम्मानित था ऋग्वेद तथा कालान्तर के अन्य ग्रन्थों में अपव्य मात्र की कामना की गयी है किन्तु ऋग्वेद में ही अनेक ऐसे मन्त्र भी विद्यमान है जो पुत्र की कामना से मुक्त है। अथर्ववेद तो पुत्र उत्पत्ति की श्रेष्ठता स्पष्ट रूप से वर्णित होती है। वृहदारण्यक उपनिषद में तो विदुषी पुत्री की प्रतिष्ठा और कामना के प्रसंग प्राप्त होते हैं, संयुक्त निकाय में तो बुद्धिमती तथा सदाचारी पुत्री को पुत्र की अपेक्षा श्रेष्ठ घोषित किया गया है। सदाचारी तथा बुद्धिमती पुत्री की कामना में यह भावना प्रच्छन्न रही होगी कि इसके अभाव में योग्य पुत्र की कल्पना, कल्पना मात्र होगी। आत्म रक्षार्थ पुत्र की उपयोगिता पुत्री की अपेक्षा निर्विवाद रूप से अधिक होती है जीवन के अन्य क्षेत्रों में पुत्री की उपयोगिता सर्वथा अक्षुण्य थी। सभी मांगलिक कार्य पुत्रियों द्वारा ही कराये जाते थे। पूर्व वैदिक काल में कन्याओं को अपने मनोनुकूल वर चयन का अधिकार था उत्तर वैदिक काल तक आते–आते यह प्रथा अत्यन्त प्रभावकारी हो गयी तथा स्वयंवरों का आयोजन किया जाने लगा।

यह धारणा अधिक दिनों तक अक्षुण्य रह सकी। आर्य तथा अनार्य संघर्ष में अपनी नैसर्गिक शारीरिक शक्ति के कारण पुत्र का महत्वपूर्ण होना स्वाभाविक हो गया। पुनः प्रारम्भ में तो नारियों को समस्त प्रकार के धार्मिक कृत्यों में भाग लेने की न केवल स्वतन्त्रता प्रदान की गयी अपितु वरीयता भी दी गयी। वैदिक साहित्य में विश्वास द्वारा प्रत्युषि बेला में एकाकी एवं यज्ञ सम्पादन का उल्लेख मिलता है। राम के वन से प्रत्याशमित होने पर कुमारियों द्वारा ही उनको स्नान कराया गया। महाभारतकार ने तो कन्या की प्रतिष्ठा की घोषणा करते हुए यहां तक कह दिया कि जहां कन्या को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, वही लक्ष्मी का निवास होता है।

कालान्तर में पुत्रियों की इस स्थिति में भी परिवर्तन आ गया। धार्मिक कृत्यों पर पुरूषों का एकाधिकार हो गया तथा स्त्रियां इससे सर्वथा वंचित कर दी गयी। जिन कन्याओं का विवाह प्रौढ़ होने पर किया जाता था, अब उनका विवाह अल्पायु में ही कर दिया जाने लगा, परिणामतः उनकी शिक्षा समाप्त हो गयी, विधवा विवाह पूर्व प्रतिबन्धित हो गया अन्तर्जातीय विवाह पूर्ण प्रच्छन्न हो गया। जातीय व्यवस्था इस भांति घनी मूल हुई कि जातियों में भी अवान्तर जातियां अस्तित्व में आ गयीं। वर चयन की संकुचित परिधि विधवा–विवाह प्रथा की प्रच्छन्नता आदि कारणों से कन्या पिता के दुःख का कारण मानी गयी। जिमर तथा डेलबुक ने वैदिक युग में कन्या वध की प्रथा की ओर संकेत किया है। उनकी मान्यता का आधार तैत्तिरीय संहिता, मैत्रायणी संहिता तथा काष्क संहिता

है। संहिता ग्रन्थों में प्रयुक्त 'परास्यन्ति' शब्द का अर्थ करते हुए जिमर तथा डेलबुक ने कहा है कि लड़कियों को ऐसे घने जंगलों में छोड़ दिया जाता था जहां हिंसक प्राणी उन्हें अपना भक्ष्य बना लेते थे। इस सन्दर्भों का यहीं अर्थ ग्रहण करते हुए राजबाड़े ने कहा कि यहां पुत्री के उन दुर्दिनों का चित्र उपस्थित किया गया है जब कन्या–वध ने भारतीय इतिहास के पृष्ठों को काला किया है। किन्तु किसी भी भारतीय विचारक अथवा टीकाकार ने उक्त सन्दर्भ की इस भांति की व्याख्या प्रस्तुत नहीं की है। सायण के अनुसार उक्त सन्दर्भ का अर्थ लड़की को वरकुल में छोड़ना है। निरूक्त में भी उक्त का अभिप्राय लड़की को वर को प्रदान करना ही वर्णित है।

सूत्रकारों तथा धर्मशास्त्रकारों का कन्या विषयक दृष्टिकोण उदार रहा। पारस्कर गृह सूत्र में कहा गया है कि कन्या को पत्नी के रूप में सबसे पहले सोम नामक देवता ने प्राप्त किया। इसके बाद गन्धर्व, अग्नि तथा मनुष्य ने प्राप्त किया। मनु का एतद् विचार अति सम्माननीय है। मनु ने पुत्री को पुत्र के समान ही सम्माननीय माना तथा पुत्र के न रहने पर कन्या को सम्पत्ति की उत्तराधिकारणी भी स्वीकार किया। मनु के इस विचारों का अनुगमन नारद तथा वृहस्पति ने भी किया।

जिस समय समाज विधिक विचारकों के द्वन्दपूर्ण विचारों में मानसिक तथा अपत्य सुख की खोज कर रहा था, जिस सयम कन्या विषयक सामाजिक दृष्टिकोण पराड़मुख हो रहा था, उसी समय मान्स प्रभृत नाटककारों का अविर्भाव हुआ। नाटककार सर्वथा सामाजिक विकृतियों पर कुठाराघात करता हुआ समाज के वास्तविक रूप को प्रस्तुत करता है तथा स्वस्थ्य समाज के लिए उत्प्रेरित करता है। बालचरितम् में विवृत है कि कन्या सर्वथा दया एवं सम्मान के योग्य थी। देवकी के कन्या उत्पत्ति की सूचना कंस को प्रदान करते हुए प्रतिहारी कंस से निवेदन करती है कि इस बार उसने पुत्री को जन्म दिया है अतः महाराज उस पर दया करें। वसुदेव स्वतः कंस से निवेदन करते है कि महाराज देवकी की प्रार्थना स्वीकार कीजिए। स्त्रियों का लड़कियों में अधिक स्नेह होता है। अवियारकम नाटक में नाटककार ने पुत्री के विवाह के विषय में पिता के दायित्वों को उसका बोध कराया है न कि उसकी उत्पत्ति को किसी दुःख का हेतु सिद्ध किया है। एक अन्य स्थल पर तो कन्या का पिता होना सौभाग्य की बात कही गयी है। हां कन्या–वियोग पारिवारिक दुख का कारण अवश्य थी किन्तु यहां भी दुःख का कारण अपत्य स्नेह है न कि अपत्य कन्या होना। अवान्तर कालीन नाटककार कालिदास ने भी पिता को अपत्य उत्तरदायित्व का निर्वहन करने वाला ही वर्णित करते है।ऋषि कण्व अपनी पालिता पुत्री के खोटे ग्रहों की शान्ति के लिए सोम तीर्थ जाते है। इस तथ्य से भी नहीं नकारा जा सकता कि प्रत्येक पिता का कन्या के भावी जीवन के प्रति चिन्तित होना भी अनुरागतिशयता के कारण ही है।

विवाह संस्कार वर–वधू को पति–पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित करता था। विवाह संस्कार सम्पन्न होने के बाद दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में पत्नी, पति के साथ उसके घर चली जाती है तथा दाम्पत्य जीवन–यापन करती है। इस नवीन परिवेश में दम्पति एक दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्यों तथा अधिकारों की स्वाभाविक अनुभूति करते है। अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण सामाजिक मान्यताओं द्वारा हो जाता था। धातव्य है कि पुरे भारत में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों पर अधिक बल दिया गया। कर्तव्य निर्धारण की अधिकता के पीछे जीवन के प्रत्येक

क्षेत्र में समन्वय की भावना प्रच्छन्न थी। विवाह के बाद वधू का घर में प्रवेश सामान्य नहीं समझा जाता था अपितु वह पति गृह में साम्राज्ञी के रूप में प्रविष्ट होती थी।

उत्तर वैदिक काल में भी नारियों की सामाजिक एवं पारिवारिक प्रतिष्ठा सर्वथा अक्षुण्य बनी रही। तैतिरीय ब्राह्मण में कामना की गयी है कि पति–पत्नी अपने सत्कर्मों द्वारा परस्पर संयुक्त हो जाय। उन्हें चाहिए की वे समान मन से शत्रु का नाश करें तथा ऐसी अमर ज्योति का अर्जन करें जो स्वर्ग में भी अक्षुण्य रहे। ऋग्वैदिक काल में वधू को सम्राज्ञी श्वसुरे भव का जो आशीर्वाद प्राप्त होता था वह उत्तर वैदिक काल में पुष्पित एवं पल्लवित होता प्रतीत होता है। पत्नी न केवल पति के साथ समान अधिकार लेकर उसके प्रत्येक कार्य में हाथ बटाती थी अपितु ससुराल में पति की बहनों (ननदों) पर शासन करने वाली भी प्रतीत होती है। अथर्ववेद में पुत्रवधू द्वारा श्वसुर की सहायता की स्वाभाविक कामना की गयी है। यह कामना कितनी यथार्थपूर्ण है क्योंकि वृद्धावस्था में पुत्रवधू ही श्वसुर के लिए अवलम्ब होती है। इसी ग्रन्थ में विवृत है कि पुत्रवधू सास तथा श्वसुर का समान रूप से आदर करती थी तथा सास की वृद्धावस्था में उसके उत्तरदायित्वों का निर्वहन करती थी।

सूत्रकाल में तो दाम्पत्य जीवन की मधुरता एवं समन्वय के लिए किये जाने वाले अनुष्ठानों की संख्या वर्द्धित हो गयी। विवाह के समय आयोजित होने वाला चतुर्थी कर्म इसी भांति का अनुष्ठान था। वर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करता हुआ कहता था कि 'कन्ये' तुम्हारे प्राणों के साथ मैं अपने प्राणों को मिलाता हूँ। तुम्हारी अस्थियों के साथ अस्थियों को मांसो के साथ मांसों को तथा त्वचा के साथ त्वचा को मिलाता हूँ वधू प्रार्थना करती है कि आर्यमा देव हमें पितृकुल से छुड़ायें तथा पति कुल में मिलायें। हमारा पति समृद्ध हो ताथ हमारे और पति को जो पारस्परिक अनुराग है, अग्निदेव उनका अनुमोदन करें। शाखामन गृहम सूत्र में पति–पत्नी की पारस्परिक अनुकूलता के लिए विवाह के बाद आयोजित होने वाले अनुष्ठान का उल्लेख भी प्राप्त होता है। प्राचीन विश्व की सभी सभ्यताओं में अभिचारिक क्रियाओं का उल्लेख भी मिलता है। पति को पत्नी के प्रति अनुरक्त बनाये रखने के लिए वधू के पिता द्वारा किये जाने वाले अभिचार कर्म में यज्ञकर्म तथा अभिचार क्रिया का विचित्र संयोग भारतीय सभ्यता में प्राप्त होता है।

स्मृति–युग में स्त्रियों की साम्पत्तिक स्थिति के सम्बन्ध में प्रचलित भावना में बड़ा परिवर्तन परिलक्षित हुआ मनु, याज्ञवल्क्य, वृहस्पति, नारद, विष्णु, देवल, कात्यायन आदि स्मृतिकारों ने कतिपय रूपी वारिसों को उत्तराधिकार क्रम में स्थान प्रदान किया। मनु ने विधवा पुत्री और माता को उत्तराधिकार क्रम मे अभिव्यक्त रूप से स्थान प्रदान किया। वृहस्पति ने पुत्री के उत्तराधिकार पर बल दिया, उन्होंने पत्नी के उत्तराधिकारी को मान्यता प्रदान की, किन्तु उन्होंने इस अधिकार का विस्तार स्थावर सम्पत्ति तक करने से इन्कार कर दिया। विष्णु, देवल, कत्यायन का भी मत यही था कि पत्नी पति की सम्पत्ति को विरासत में पाने का दावा कर सकती है। इस प्रकार स्मृति युग में विधवा, पुत्री और माता अभिव्यक्त रूप से वारिस घोषित की गयी थी, किन्तु वे पुरूष वारिसों के न होने की दशा में, किसी पुरूष की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी बन सकती है। इसके अतिरिक्त उनके दान योग्य होने की क्षमता पर पवित्रता, पुनर्विवाह न करना आदि कतिपय शर्ते लगा दी गयी थी।

स्वाधीन भारत में संसद ने हिन्दू स्त्रियों के बेहतर अधिकार प्रदान करने के उददेश्य से सन् 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1965 की अधिनियमिति की। चूंकि हिन्दू विधि की विभिन्न शाखाओं ने भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्तराधिकार क्रम निर्धारित कर रखे थे और यह कि मिताक्षर में हिन्दू स्त्रियों की स्थिति और उनके अधिकारों तथा उत्तराधिकार क्रम और उन्हें यथा स्थिति आवंटित किये जाने वाले अंश के सम्बन्धों में भिन्न–भिन्न प्रबल मत प्रचलित थे। अतः इनका और अन्य समस्याओं का न्यायोचित और उचित समाधान करने के लिए इस अधिनियम की अधिनियति की गयी। इस अधिनियम ने न केवल विद्यमान हिन्दू विधि को संहिता वृद्ध किया, बल्कि सुधारवादी भावना से उसमें मौलिक परिवर्तन भी किये।

सैकड़ों वर्षों की गुलामी के बन्धन से मुक्त होते ही भारतीय समाज को नवजीवन मिला फलस्वरूप सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक हर क्षेत्र में प्रगति के सोपान चले, इस सोपान में भला भारतीय नारी क्यों पीछे रहती? आजादीके समय से ही भारतीय नारी ऊर्जावाद हो उठी थी। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय महिलाओं की स्थिति परिवर्तन के लिए बुद्धिजीवियों, समाजशास्त्रियों एवं स्वयं जागरूक महिलाओं के प्रयास शुरू हो चुकें थे। वर्तमान समय में अगर हम देखें तो भारतीय महिलाओं की स्थिति में काफी बदलाव आ चुके है। मध्ययुग की पीड़ित नारी आज राष्ट्र प्रगति की उत्तराधिकारिणी बन चुकी है। आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, वैज्ञानिक हर क्षेत्र में यह अग्रणी भूमिका निभा रही है।

अतः अन्त में कहा जा सकता है कि भारतीय समाज के दृष्टिकोंण में महिलाओं के प्रति व्यापक बदलाव आया है। पहले जिस भारतीय समाज में कन्या जन्म को अभिशाप्त नजरों से देखा जाता था, आज काफी बदलाव आ गया है। अब बौद्धिक परिवार में पुत्र मोह का सपना भंग हो चुका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. ऋग्वेद 10.85.43
2. अथर्ववेद 3,23,6,10
3. अथ य इच्छेद, दुछिता में पण्डिता जायेत, वृहदारण्येकोपनिषद् 4.4.18
4. संयुक्त निकाय 3,2,6
5. अलेकर ए0एस0 पोजीशन ऑफ वूमेन इन ऐशियन्ट इण्डिया पृ0 4
6. रामायण 3,30,7–8, महाभारत 1,112
7. एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईदाना हविषा घृताची। पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन पृ0 196 पर उदृत
8. वेदालंकार, हरिदत्त, हिन्दू परिवार मीमांसा पृ0 198
9. तैत्तिरीय संहिता 6,5,10,3
10. मैत्रीयणी संहिता 4,6,4
11. वेदालंकार, हरिदत्त, हिन्दू परिवार मीमांस पृ0 298
12. निरूक्त, भारतीय रिसर्च इंस्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित पृ0 421
13. पारस्कर गृह सूत्र, पृ0 72
14. मनुस्मृति 9,130
15. उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति, पृ0 152

शिक्षा के विकास में सर्वशिक्षा अभियान की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सरिता गुप्ता
शोध छात्रा
स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
रांची विश्वविद्यालय रांची

सारांश

सर्वशिक्षा अभियान का कार्यान्वयन वर्ष 2000–2001 से किया जा रहा है जिसका उद्देश्य सार्वभौमिक सुलभता एवं प्रतिधारण, प्रारंभिक शिक्षा में बालक–बालिका एवं सामाजिक श्रेणी के अंतरों को दूर करने तथा अधिगम की गुणवत्ता में सुधा रहे तु विविध अंतः क्षेपों में अन्य बातों के साथ–साथ नए स्कूल खोला जाना तथा वैकल्पिक स्कूली सुविधाएं प्रदान करना, स्कूलों एवं अतिरिक्त कक्षा–कक्षों का निर्माण किया जाना, प्रसाधन–कक्ष एवं पेय जल सुविधा प्रदान करना, अध्यापकों का प्रावधान करना, नियमित अध्यापकों का सेवाकालीन प्रशिक्षण तथा अकादमिक संसाधन सहायता, निःशुल्कपाठ्य–पुस्तकें एवं वर्दियां तथा अधिगम स्तरों में सुधार हेतु सहायता प्रदान करना शामिल है सर्वशिक्षा अभियान जिला आधारित एक विशिष्ट विकेन्द्रित योजना है। इसके माध्यम से प्रारंभिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण करने की योजना है। इसके लिए स्कूल प्रणाली को सामुदायिक स्वामित्व में विकसित करने रणनीति अपनाकर कार्य किया जा रहा है। यह योजना पूरे देश में लागू की गई है और इसमें सभी प्रमुख सरकारी शैक्षिक पहल को शामिल किया गया है। इस अभियान के अंतर्गतराज्यों की भागीदारी से 6–14 आयुवर्ग के सभी बच्चों को 2010 तक प्रारंभिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था।

सर्वशिक्षा अभियान का एक मुख्य उददेश्य सभी को शिक्षा की गुणवत्ता प्रदान करना है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसे सशक्तीकरण के लिए सबसे शक्तिशाली उपकरण के रूप में स्वीकार किया गया। इसे आर्थिक रूप से अक्षम और गरीबों के घर तक पहुंचाने का प्रयास किया गया है जिससे उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सके। सर्वशिक्षा ने अपने प्रयासों के दम पर लोगों के शैक्षणिक विकास एवं सामाजिक परिस्थितियों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। वर्तमान में यह सिर्फ लोगों के शिक्षा के साथ उनके गुणवतापूर्ण विकास पर जोर दिया जा रहा है। जिससे बच्चों में आरंभिक तौर पर ही कुशल सक्षम एवं मूल्यपरक शिक्षा का संचार किया जा सके। अधिकांशतया मामलों में देखा गया है कि एक तरफ तो आधारभूत संरचनाओं का विकास कर दिया जाता है परंतु उन आधारभूत संरचनाओं का सही प्रयोग किया जा रहा है या नहीं और उसके वांछित परिणाम मिल रहे हैं या नहीं। इनको जानने की कभी कोशिश नहीं की जाती है। इस शोध पत्र के माध्यम से शिक्षा के गुणवतापूर्वकता को जानने का प्रयास किया गया है।

मुख्य विंदू–शिक्षा, सशक्तिकरण, प्राथमिक शिक्षा, सहभागिता, आधारभूत संरचना

भूमिका

भारत दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश में से एक है। हर देश का विकास गुणवत्ता की बुनियादी शिक्षा के लिए योग्य नहीं है तो बिना शिक्षा के मनुष्य पशु बन जाता है। शिक्षा मनुष्य की विकास और जन्मजात शक्तियों की एक निरंतर प्रक्रिया है जो प्राकृतिक, सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील है। 21 वीं सदी में नवाचार की प्रक्रिया के माध्यम से ज्ञानको धन और सामाजिक अच्छे में

परिवर्तित करने की एक राष्ट्र की क्षमता अपने भविष्य को निर्धारित करने जा रही है। राष्ट्र का भविष्य युवापीढ़ी के हाथों में है। इसीलिए प्राथमिक स्तरपर गुणवत्ता और समग्र शिक्षा बहुत आवश्यक है। यह शिक्षा की नींव है और प्राथमिक शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। भारत दुनिया में सबसे बड़ी शिक्षा प्रणाली में से एक है। लेकिन एक अन्य पक्ष में भारत में सबसे अधिक निरक्षरता पाई गई, यह हमारीस रकार की सर्वशिक्षा अभियान और राष्ट्रीय साक्षरता मिशन जैसे कार्यक्रम का उपयोग करने में असमर्थता को दर्शाता है। दूसरी ओर श्रीलंका, म्यांमार, वियतनाम, थाईलैंड जैसे देशों ने बहुत कम समय में बेहतर साक्षरता हासिल की[1]। भारत को स्वतंत्रता मिलने के बाद सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा को जन–जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को एक राष्ट्रीय परियोजना के रूप में स्वीकार किया गया। भारत में शिक्षा की जड़ें शायद वेद, पुराण, रामायण और महाभारत काल और उसके बाद राजाओं, मुगलों और ब्रिटिश प्रशासन से मिलीं। लेकिन इन प्रशासनों में, शिक्षा केवल समाज के विशेषाधिकार प्राप्त वर्गों तक ही सीमित थी। वैदिक शिक्षा पूरी तरह से चरित्र निर्माण, ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के विकास और जो आर्थिक समृद्धि की ओर ले जाने में सक्षम थी। वैदिककाल के बाद की अवधि 1400 और 600 ई. पू. ऋग्वेदिककाल से लेकर बौद्ध धर्म और जैन धर्म की शुरुआत तक। वैदिककाल के बाद के व्यावहारिक और उपयोगी विषयों ने ब्राह्मणी शिक्षा के महत्व को बढ़ा दिया। उत्तर–वैदिक शिक्षा केवल जीवन के लिए थी। वुड्स के समय के दौरान प्राथमिक शिक्षा की स्थिति बहुत खराब थी क्योंकि कंपनी का ध्यान विश्वविद्यालय की शिक्षा की ओरथा। फिर से भारतीय शिक्षा आयोग 1882 की स्थापना प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का आकलन करने और इसके सुधारों के लिए सुझाव देने और शिक्षा के क्षेत्र में सभी मिशनरियों के काम का मूल्यांकन करने के लिए की गई थी। प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य से हंटर कमीशन की नियुक्ति की गई। इससे प्राथमिक शिक्षा का आकार बदल गया था। उस काल में बड़ौदा के महाराजा ने प्राथमिक शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बना दिया। 1918 में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य घोषित करने के लिए 'विठ्ठल भाई पटेल' ने बंबई में विधान परिषद में विधेयक पेश किया। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का विस्तार इसलिए किया था क्योंकि यह मुक्त भारत[2], की उभरती जरूरत थी। सरकार ने प्राथमिक शिक्षा को मुफ्त, सार्वभौमिक और अनिवार्य बनाने के लिए सक्रिय और ईमानदार कदम उठाए। अनिवाय शिक्षा के प्रमुख को भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 के माध्यम से घोषित किया गया था अर्थात् राज्य 6 से 14 वर्ष के आयुवर्ग के बीच मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के लिए इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर प्रदान करने का प्रयास करेगा। राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड की स्थापना इसी आधारपर की गई थी। सरकार देश के सभी कोनों में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए प्रयास करती है। सुप्रीम कोर्ट ने मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के लिए दिशानिर्देश दिया था। सरकार ने 86 वां संशोधन 2002 किया यह एक मौलिक अधिकार है जिसको अनुच्छेद 21 के अंतर्गत शामिल किया गया है। यानी राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा[3]।

साहित्य की समीक्षा

प्राथमिक शिक्षा के अलावा एक बुनियादी मानवीय आवश्यकता जीवन स्तर को बढ़ाने, लाभकारी रोजगार प्रदान करने, क्षेत्रीय पिछड़ेपन को दूर करने के लिए महत्वपूर्ण है, जिससे देश का समग्र विकास और भलाई सुनिश्चित होती है। इसलिए भारत में और विशेष रूप से झारखण्ड राज्य में शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न शिक्षाविदों, शैक्षिक विचार कों, शोधकर्ताओं, नीतिनिर्माताओं और शैक्षिक

सुधारकों द्वारा किए गए साहित्य की समीक्षा करना समय की आवश्यकता है। मैंने शोध के अपने उद्देश्य के और अधिक दायरे का पता लगाने के लिए अनुसंधान के अपने अध्ययन से संबंधित प्रासंगिक प्रकाशित साहित्य की जांच की है। उपरोक्त विषयों पर विभिन्न अध्ययनों, विचारों और टिप्पणियों का क्रेज इस प्रकार है। आचार्य, प्रशांत कुमार और बेहरा, मनोरंजन[4], ने बताया कि, विशेष रूप से धनराशि जारी करने, अपर्याप्त निगरानी और अन्य संबद्ध विकास योजनाओं के लिए एसएसए के जिलास्तरीय अभिसरण की कमी के कारण नागरिक कार्यों की प्रगति बहुत धीमी थी। लेकिन राज्य और जिला दोनों स्तरों पर शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने में प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम प्राधिकरण द्वाराउ ल्लेखनीय प्रगति हुई। लगभग 70 प्रतिशत (शिक्षा गारंटी योजना) केंद्रों को संचालित किया गया था जो एक उल्लेखनीय उपलब्धि थी। लेकिन वैकल्पिक और नवीन शिक्षा केंद्र (एआईई) के उद्घाटन में प्रगति बहुत असंतोषजन कथी। दीक्षा, तेजस्विनी[5], ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के संदर्भ में छात्रों और शिक्षकों की मौजूदा सेवाओं और जरूरतों में अंतराल की पहचानकी। सर्वेक्षण में नवीमुंबई नगर निगम के तहत पांच स्कूल शामिल थे। अध्ययन से पता चला कि स्कूलों का बुनियादी ढांचा बहुत खराब स्थिति में था। कक्षाओं, शिक्षकों, मेजों और कुर्सियों की संख्या अपर्याप्त थी। 420 छात्रों के लिए केवल 3 क्लासरूम थे और पूरे स्कूल की देखभाल केवल दो शिक्षक करते थे। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, पुणे[6], ने स्कूल छोड़ने की समस्या की जांच की, जो न केवल भारत में, बल्कि अन्य विकासशील देशों में भी प्राथमिक शिक्षा प्रणाली को लगातार परेशान करती रही है। इस लेख में कम उपस्थिति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के बारे में बताया गया। यह भी सुझाव दिया गया कि स्थानीय शिक्षकों को स्कूलों में पढ़ाने के लिए उपलब्ध कराया जाए ताकि शिक्षक अनुपस्थिति की समस्या को कम किया जा सके और समय की पाबंदी में सुधार किया जा सके। महिला शिक्षकों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिए और माता–पिता और शिक्षकों के बीच सांस्कृतिक अंतर को स्कूल प्रबंधन और नियंत्रण प्रणाली में भागीदारी के अधिक विस्तृत रूप के माध्यम से पाटा जाना चाहिए। जयचंद्रन, उषा[7],, ने माना कि यहां के अधिकांश बाल श्रमिक ईंट भट्ठा उद्योग में काम करते हैं। मंदी के दौर में, ये बच्चे घर पर रहते थे और अपनी शिक्षा लेने में असमर्थ थे। इसे ध्यान में रखते हुए श्रमजीवी संगठन के सहयोग से विधायक संसद (रचनात्मक संसद) द्वारा चलाए जा रहे मोबाइल स्कूलों की स्थापना भंगुओं (प्रवासी मजदूरों द्वारा बनाई गई अस्थायी झोपड़ियों) के पास ईंट भट्टों के स्थल पर की गई थी। जिलापरिषद द्वारा सत्र के अंत में परीक्षा आयोजित की जाती है और इन बच्चों को प्रमाणपत्र दिए जाते हैं जो अपने माता–पिता की जीवनशैली के प्रवासी स्वभाव के कारण नियमित स्कूलों में अपनी शिक्षा जारी रखने में असमर्थ थे। जीओआई से फंडरिलीज में देरी और फंड में कटौती, ज्यादातर राज्यों में उपलब्ध कुलफंड (बैलेंस और रिलीज) से बाहर खर्च किए गए फंड के अनुपात में सुधार हुआ है। वित्त वर्ष 2014–15 में, झारखण्ड ने उपलब्ध धनराशि का 100 प्रतिशत पिछले वर्ष में 80 प्रतिशत तक खर्च किया था। इसी तरह, वित्त वर्ष 2013–14 और वित्त वर्ष 2014–15 के बीच महाराष्ट्र में व्यय में 73 प्रतिशत से 93 प्रतिशत तक सुधार हुआ। दिसंबर 2015 में, जवाबदेही पहल ने एक सुविधा स्तर व्यय ट्रैकिंग सर्वेक्षण किया।[8] सर्वेक्षण का उद्देश्य प्रमुख सामाजिक क्षेत्र की योजनाओं में सुविधा स्तरपर धन के प्रवाह को पकड़ना है। ये हैं सर्वशिक्षा अभियान।), एकीकृत बालविकास योजना और स्वच्छ भारत मिशन । इस खंड में हम एसएसए सर्वेक्षण से हमारे कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्षों पर रिपोर्ट करते हैं। सर्वेक्षण में 300 स्कूलों को शामिल किया गया, जो भारत के

5 राज्यों में 10 जिलों में फैला हुआ है। इनमें बिहार–नालंदा और पूर्णिया, झारखण्ड के धनबाद व रांची, हिमाचल प्रदेश–कांगड़ा और सोलन, मध्य प्रदेश–सागर, महाराष्ट्र –सतारा, राजस्थान–जयपुर, उदयपुर, झालावाड़ और झुंझुनू शामिलहैं।

बसु[9], ने बिहार में महिला शिक्षा पर एक अध्ययन किया। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बिहार में महिलाओं की शिक्षा के पिछड़ेपन के कारणों की जांच करना था । सर्वशिक्षा अभियान के दो पहलू हैं। यह प्राथमिक शिक्षा योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए एक विस्तृत अभिसमय रूपरेखा प्रदान करता है और प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण क्षेत्रों को मजबूत करने के लिए बजट प्रावधान के साथ कार्यक्रम करता है।[10], अपनेलेख में विशेष ध्यान समूहों के लिए सर्वशिक्षा ने कहा कि हालांकि एसएसए निर्भर करता है प्रत्येक राज्य के स्कूल शिक्षा विभाग द्वारा शुरू की गई पहल और ड्राइव पर, लेकिन जमीनीस्तर पर इसका कार्यान्वयन समान रूप से महत्वपूर्ण है"। एसएसए के भाग के रू‍प में, केंद्र और राज्य सरकारें वितरण प्रणाली की दक्षता में सुधार करने के लिए सुधार कार्य करेंगी। सर्वशिक्षा अभियान इस आधार पर आधारित है कि प्रारंभिक शिक्षा हस्तक्षेपों का वित्तपोषण प्रभावी विकेंद्रीकरण के माध्यम से स्कूल–आधारित हस्तक्षेपों के सामुदायिक स्वामित्व के लिए टिकाऊ और कार्यक्रम कॉल होना है। शर्मा[11], ने छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि के संदभ में हिमाचल प्रदेश के जिला हमीरपुर में सर्वशिक्षा अभियान की प्रभावशीलता का विश्लेषण किया। यह एनसीईआरटी, एनसीटीई, एससीई आरटी, एसईसीई आरटी, डीआईईटीटी जैसे राष्ट्रीय, राज्य और जिलास्तर के संस्थानों के लिए एक प्रमुख क्षमता निर्माण भूमिका की कल्पना करता है।

यह संस्थागत विकास, नए दृष्टिकोणों के उल्लंघन और लागत प्रभावी और कुशल तरीकों को अपनाने से मुख्यधारा के शैक्षिक प्रशासन में सुधार के लिए कहता है और इस कार्यक्रम में समुदाय आधारित निगरानी प्रणाली होगी। ''अग्रवाल[12], ने शिक्षा के क्षेत्र में कुंजी संकेत कों पर डेटा की लगातार और समय पर उपलब्धता की आवश्यकता की जांच की''।

अध्ययन क्षेत्र

धनबाद जिले को 1956 में पूर्व माणभूम जिले के सदर प्रखंड के पुराने धनबाद प्रखंड, चास और चंदनक्यारी पुलिस स्टेशनों को बनाते हुए गठित किया गया था। धनबाद 1928 से पुलिस जिला है। 1971 के बाद, बिहार राज्य के जिलों के पुनर्गठन ने धनबाद जिले को प्रभावित नहीं किया। धनबाद नगरपालिका मुख्य शहर और जिला का मुख्यालय है। 1991 में बोकारो जिला का गठन, धनबाद जिला के चास अनुमण्डल और गिरिडीह जिले के बेर्मो अनुमण्डल को लेकर किया गया।

धनबाद जिला पश्चिम में गिरिडीह और बोकारो द्वारा, उत्तर में गिरिडीह और दुमका द्वारा और पूर्व और दक्षिणी पश्चिम बंगाल के पुरुलिया जिले से घिरा है। छोटानागपुर पठार के अधिकतर भाग के शुरुआती इतिहास को रहस्य में ढंका हुआ है और धनबाद जिले के विशेष रूप से ऐसा है। यहां तक कि बाद की अवधियों का विवरण ट्रेस करना मुश्किल है क्योंकि वर्तमान जिले का गठन किया गया था, लेकिन मानभूम का एक छोटा और महत्वपूर्ण हिस्सा। मानभूमि (1928) के निपटारे की रिपोर्टमें यह कहा गया है कि कोई भी पत्थरशिला लेख, तांबाप्लेट या पुराने सिक्कों की खोज नहीं की गई थी और तांबे की प्लेट या ताड़ के पत्तों का एक भी दस्तावेज सर्वेक्षण और निपटान परिचालन के दौरान नहीं मिला था। सबसे पुराना प्रामाणिक दस्तावेजों का उत्पादन कागजात परथा और मुश्किल से भी सौसाल का था। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए धनबाद (1964) के लिए जिला

गैजेटियर केवल 1928 की निपटान रिपोर्ट में इतिहास के अध्याय को दोहराता है, जो पूरे जिले मानभूम से संबंधित है।

यह मानभूम के पूर्व जिले का एक छोटा सा गांव था, जिसका मुख्यालय पुरूलिया (अब पश्चिम बंगाल में) में था। बदले में मानभूम ने राजा मानसिंह से अपना नाम प्राप्त किया जो सम्राट अकबर द्वारा इस क्षेत्र को एक विशिष्ट युद्ध में जीत के बाद उपहार में दिया था। प्रशासनिक उद्देश्यों के लिए जिला बेहद विशाल और दूर–दराज बीरभूम, मानभूम और सिंहभूम में विभाजित हो गया।

हालांकि, 24.10.56 को धनबाद को राज्य पुनर्निर्माण आयोग की सिफारिश पर 1911 अधिसूचना के आधार पर एक जिला घोषित किया गया था। इसकी भौगोलिक लंबाई, उत्तर से दक्षिण तक फैली, 43 मील और चौड़ाई, 47 मील की दूरी पर, पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई थी। 1991 में धनबाद के एक भाग को बोकारो जिले से दूर कटा हुआ था, जिससे कुल क्षेत्रफल 2959 वर्ग किलोमीटर तक हो गया।

इससे पहले, जिला को दो उप–विभाजनों में विभाजित किया गया धनबाद सदर और बाघमारा पूर्व में 6 ब्लॉक किए गए, जबकि पिछली चार और एक साथ उन्होंने 30 नगरपालिका, 228 पंचायतों और 1654 गांवों को शामिल किया था। जिला की इतनी विशालता ने क्रमशः बोकारो और धनबाद में दो पुलिस मुख्यालयों के लिए बुलाया। इस बीच, आज जिले के रूप में खड़ा है, केवल एक उप–विभाजन है जिसे धनबाद सदर कहा जाता है। वर्तमान में, 8 ब्लॉकों यहां हैं झरिया, बाघमारा, धनबाद, निरसा, गोविंदपुर, बालीपुर, टुंडी, और तेचंचिबदले में 181 पंचायत और 1348 गांव हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार, जिलों की कुल आबादी 26ए84ए487 है, जिसमें से पुरुष की संख्या 1405956 के रूप में दर्ज की गई है जिसमें 1278531 महिलाएं हैं।[13]

100,850 एकड़ पहाड़ियों और 56454 एकड़ वनों के हैं। यह समुद्र के स्तर से 500–1000 फीट ऊपर है इसकी मिट्टी प्रकृति में और बड़ी लाइटिटिकहै।

सर्वशिक्षा व गुणवतापूर्ण शिक्षा प्रणाली

अध्ययन शिक्षक की आवश्यकता शिक्षा प्रणाली के आधार स्तंभ हैं। गुणात्मक प्रशिक्षण इनपुट शिक्षकों के बीच मूल्य संवर्धन के लिए अग्रणी है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बढ़ाने का एक तरीका है। शिक्षक प्रशिक्षण के तहत एक सतत प्रक्रिया है। यूईई को प्राप्त करने में शिक्षकों की व्यापक भूमिका और महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। शिक्षकों को लक्षित करना काफी महत्वपूर्ण है। जबतक शिक्षक नए शिक्षण शिक्षाशास्त्र को अपनाने के लिए खुद को तैयार नहीं करते, तब तक हमारे स्कूलों में शिक्षा के मौजूदा मानक में कोई सुधार नहीं किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि प्रारंभिक कक्षाओं को पढ़ानेवाले सभी शिक्षक एसएसए के तहत पूरी तरह से उन्मुख हों। सेवा हौसले से भर्ती गैर–प्रशिक्षित शिक्षकों के लिए शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम नियमित रूप से जिलास्तर पर आयोजित किए जाने चाहिए। शिक्षक प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या संबंधी गतिविधियों के बारे में शिक्षकों के ज्ञान में सुधार करना और शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, आनंदमय और रोचक बनाना चाहिए। अध्ययन का मूल तर्कशिक्षा प्रणाली में शिक्षकों के महत्व से आता है क्योंकि वेहमारे समाज के सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक हैं जो अपने छात्रों के समग्र विकास में मदद करते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक स्वयं शिक्षा से संबंधित विभिन्न सरकारी योजनाओं और योजनाओं के बारे में विशेष रूप से प्रारंभिक शिक्षा के बारे में जागरूक हों। इसके अतिरिक्त, यह कार्यक्रम कार्यान्वयन के समग्र प्रदर्शन को देखेगा और संकेत देगा कि योजना को

विभिन्न राज्यों में सुधारात्मक उपायों के साथ लागू किया जा रहा है या नहीं। शिक्षा कर्मियों ने इस कदम का स्वागत करते हुए कहा कि इस योजना का महाराष्ट्र में सही तरीके से अभ्यास नहीं किया जा रहा है। फोरम फॉरफेयर ने सइन एजुकेशन के अध्यक्ष जयंत जैन ने कहा, ''एसएसए में बहुत भ्रष्टाचार है।'' पिछले दिनों संगठन ने करोड़ों के घोटाले का खुलासा किया था, जिसमें फर्जी स्कूल फर्जी छात्रों को दिखाकर सहायता का दावा कर रहे थे।

वर्तमान अध्ययन में शोधकर्ता ने मुख्य रूप से निम्न विंदूओं पर अध्ययन केंद्रित किया है–

1. प्रारंभिक शिक्षा में अपव्यय
2. प्राथमिक शिक्षा पर भौतिक परिस्थितियों का प्रभाव।
3. विद्यार्थियों के नामांकन और अवधारण पर मुख्यालय में शिक्षकों के रहने का प्रभाव।
4. सार्वभौमिकरण के कार्यक्रम के संबंध में प्रारंभिक शिक्षा का प्रशासन।
5. कार्यक्रम की प्रारंभिक प्राथमिक शिक्षा में शिक्षक की भागीदारी।
6. सार्वभौमिक मुक्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को लागू करने में तनाव और तनाव।
7. प्रारंभिक शिक्षा में असमानताओं का पता लगाना।
8. स्कूल के काम काज पर प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम का प्रभाव।
9. प्राथमिक शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम।
10. प्राथमिक विद्यालयों में ड्रॉपआउट और विफलता की समस्या।

सर्वशिक्षा अभियान का गुणवतापूर्ण शिक्षा के विकास पर प्रभाव

सर्वशिक्षा अभियान पर निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम, 2009 में निधि की समीक्षा छह से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को पड़ोस के स्कूल में मुफ्त और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के लिए कानूनी अधिकार प्रदान करती है। सर्वशिक्षा अभियान (एसएसए) की केंद्र प्रायोजित योजना, जोआरटीई अधिनियम, 2009 के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नामित योजना है, देश में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए राज्य सरकारों और संघ शासित प्रदेशों को सहायता प्रदान करती है। 2016–17 के दौरान एसएसए के तहत जारी किए गए निधियों की केंद्रीय हिस्सेदारी के संदर्भ में शीर्ष 10 राज्य 06.12.2016 को थेः उत्तरप्रदेश, बिहार, राजस्थान, झारखण्ड मध्य प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, तमिलनाडु, गुजरात, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र। उत्तरप्रदेश में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा 2016–17 के दौरान 430674 लाख था। यह 2016–17 के दौरान भारत में एसएसए के तहत जारी फंड के कुल केंद्रीय हिस्से का 22.67ः था। बिहार में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा 2016–17 के दौरान 270688.44 लाख। यह 2016–17 के दौरान भारत में एसएसए के तहत जारी फंड के कुल केंद्रीय हिस्से का 14. 25ः था। झारखण्ड में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा रु 2016–17 के दौरान 164678.9 लाख। यह 2016–17 के दौरान भारत में एसएसए के तहत जारी फंड के कुल केंद्रीय हिस्से का 8.67ः था। मध्य प्रदेश में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा 2016–17 के दौरान 141450.86 लाख। यह 2016–17 के दौरान भारत में एसएसए के तहत जारी कुल केंद्रीय शेयर का 7.45ः था। जम्मू और कश्मीर में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा– 2016–17 के दौरान 83275.43 लाख। यह 2016–17 के दौरान भारत में एसएसए के तहत जारी फंड के कुल केंद्रीय हिस्से का 4.38ः था। इन शीर्ष 5 राज्यों ने वर्ष 2016–17 के दौरान पूरे भारत में एसएसए के तहत जारी फंड के कुल केंद्रीय हिस्से का 57.42ः हिस्सा 06.12 के रूप में दिया।

तमिलनाडु में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा 2016–17 के दौरान 79143.3 लाख (अखिल भारतीय का 4.17:)। गुजरात में एसएसए के तहत जारी फंड का केंद्रीय हिस्सा 2016–17 के दौरान 77740.5 लाख (अखिल भारतीय का 4.09:)।

अध्ययन विधि–

मूल रूप से अध्ययन के लिए अवलोकन व द्वितियक आंकडों के संग्रहण के माध्यम को अपनाया गया है। जिसमें द्वितियक माध्यमों में उपलब्ध पूर्व के अध्ययन के स्रोत, सरकारी प्रकाशन, जिला गजेटियर व अन्य अनपब्लिस्ठ तथ्यों की सहायता ली गई है।

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य एसएसए की प्रमुख अवधारणाओं के प्रति धनबाद जिले के प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों की जागरूकता की जांच करना था। इस अध्ययन ने लिंग, शिक्षा के स्तर, आबादियों, शैक्षणिक अनुशासन, एसएसए के तहत योजनाओं के कार्यान्वयन, प्रारंभिक शिक्षा के लिए एसएसए की निधि योजना के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टि जैसे विभिन्नचर की जागरूकता की तुलना करने का प्रयास किया।

धनबाद में शैक्षिक प्रणाली सबसे महत्वपूर्ण में से एक है और इसे विकसित करने का प्रयास सर्वशिक्षा अभियान के माध्यम से किया जा रहा है। यहां शिक्षा को सशक्तिकरण के लिए सबसे शक्तिशाली उपकरण के रू‍प में स्वीकार किया गया है। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए धन आवंटित किया जाता है प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण।

शिक्षा का अधिकार कानून–2009 के बाद से स्कूलों की संख्या में वृद्धि, शिक्षकों की नियुक्ति और प्रशिक्षण, शौचालय और खेल के मैदान जैसी बुनियादी सुविधाओं में सुधार और स्कूल तक बच्चों को लाने के लिये की जानेवाली पहलों की वजह से सरकारी विद्यालयों में नामांकन बढ़ा है। लेकिन एक–चौथाई सरकारी स्कूलों में आज भी बच्चों का नामांकन प्रतिशत 60 और इससे कम है। इसमें वे बच्चे शामिल हैं जो निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार न मिलने पर स्कूल नहीं जा पाते हैं और जिनके परिवार शिक्षा का आर्थिक भार नहीं उठा सकते और जो शिक्षा के बदले घरेलू व खेती के कामों में बड़ों का हाथ बँटाते हैं।

इसके अलावा, बच्चों की उपलब्धि और सीखने में एक सांस्कृतिक अंतर भी है जो स्कूल में प्रवेश के पहले से सक्रिय हो जाता है। शिक्षा का अधिकार भी इस सांस्कृतिक अंतर को पाटने में असमर्थ है। यहाँ इस तथ्य को मद्देनजर रखना होगा कि जैसे ही गाँव के निजी स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों को मौका मिलता है, वे अपने बच्चे को शहर के स्कूल में प्रवेश दिलाते हैं। अतः शैक्षिक अवसरों की समानता व गुणवत्ता की दृष्टि से गाँवों में बसनेवाला भारत ऐसी भौगोलिक इकाई बनता जा रहा है जहाँ शिक्षा के मूलाधिकार की प्रक्रिया और परिणाम में गहरी खाई है। अमीरी और गरीबी ही इसका एकमात्र कारण नहीं है। लिंग, जाति, क्षेत्र, भाषा और धर्म भी इनसे जुड़कर एक जटिल संरचना बना रहे हैं जो इसे बढ़ावा दे रहा है।

आज देश की अर्थव्यवस्था में गाँवों की जो स्थिति है, उसमें यह तो स्पष्ट है कि रोजगार और जीविका की दृष्टि से गाँव लोगों को रोक पाने में सक्षम नहीं हैं। गाँवों से लगातार बड़ी आबादी का पलायन हो रहा है। यह आबादी जब गाँव के बाहर जाएगी, तब शहर में ऐसे लोगों की भीड़ बढ़ेगी जिन्हें नौकरी की जरूरत है, लेकिन उनके पास आधुनिक अर्थव्यवस्था के रोजगार की शर्तों को पूरा करने की क्षमता नहीं है। जिन बच्चों ने असर–2018 में हिस्सा लिया और जिनकी उपलब्धि के आँकड़े भविष्य मेंउनकी असफलता की संभावना पर बल देते हैं, वे आर्थिक स्वावलंबन के लक्ष्य से

दूर जा रहे हैं, क्योंकि वर्तमान में साक्षरता प्रधान रोजगार ही अधिक उपलब्ध हैं। इस अध्ययन से यह बात निकलकर सामने आई है कि निम्नांकित प्रयासों के माध्यम से बच्चों में गुणवतापूर्ण शिक्षा के विकास हेतु निम्न प्रयास आवश्यक होंगे–

1. स्कूल, जैसे कि बुनियादी ढाँचे का खर्च सिविल कार्यों और रख रखाव अनुदानों का निर्माण
2. उन बच्चों को जो सीधे तौर पर दाखिला लेते हैं, उनको विशेश सुविधा जैसे परिवहन सुविधा न किताबें और स्कूलों में अन्य उपयोगी उपकरणों की उपलब्धता।
3. गुणवत्ताः गतिविधियों में सुधार के लिए मोटे तौर पर लर्निंग एनहांसमेंट प्रोग्राम और जिलों को नवाचार अनुदान
4. प्रबंधनः प्रशासन से संबंधित आवंटन और प्रबंधन गतिविधियों पर जोर
5. विविधः सामुदायिक प्रशिक्षण के लिए किए गए आवंटन और जुटाना।
6. स्कूल के कमरों, मूत्रालयों और निर्माण जैसे सिविल कार्य आवश्यकता के अनुसार शौचालय का निर्माण किया जाना चाहिए। वहाँ स्कूल के निर्माण में कोई देरी नहीं होनी चाहिए
7. प्रावधान के अनुसार, निगरानी तंत्र होना चाहिए। जिलास्तर, जोन और पर निगरानी टीम ग्रामस्तर का गठन किया जाना चाहिए। निगरानी रिपोर्ट तैयार किया जाना चाहिए और इस आशय के रिकॉर्ड को बनाए रखा जाना चाहिए।
8. एस एस ए का व्यापक और प्रभावी प्रचार किया जाना चाहिए
9. माता–पिता और छात्र प्रतिनिधियों के साथ समितियां।
10. शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार के उपयोग के लिए पुनर्संयोजन होना। शिक्षण के तरीके, बहु–ग्रेड शिक्षण, संवेदन शीलता आवश्यक हैं।

संदर्भ सूची

1. मलिक पाल कृष्णा, 2008 राइट टूइलिमेंट्री एजुकेशन, इलाहाबाद लॉ एजेंसी, लॉपब्लिसर्स, फरीदाबाद पृ 3
2. शर्माआर एन एवं शर्माआर के, 2016 हिस्ट्री ऑफ एजुकेशनइन इंडिया, एटलांटिक पब्लिसर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स नई दिल्ली पृ 90
3. घोष सुरेशचंद्र, 2012 द हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन मॉडर्न इंडिया 1757–2012, ओरिएंट ब्लैक स्वान पब्लिकेशन है दराबाद पृ 178
4. आचार्य प्रसंता कुमार एवं बेहरा मनोरंजन, 2004, फंकसनिंग ऑफ सर्वशिक्षा अभियान प्रोग्राम इन उडिसाक्वाटरली मॉनिटरींग रिपोर्ट भुवनेश्वर सेंटर फॉरडेवल पमेंटस्ट डीज पृ 39
5. अधिकारी तेजस्वीनी, 2001, स्टडी ऑफ फाइव एनएमएमसी स्कूल्सइन नवी मुंबई, मुंबई टाटा इंस्टिच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज पृ 15
6. इंडियन इंस्टिच्यूट ऑफ एजुकेशन पूणे, 2006, ए स्टडी ऑफ द एक्सटेंट एण्ड कॉजेज ऑफ ड्रॉपआउट इन प्राइमरी स्कूल इन रूरल महाराष्ट्र विथस्पेशल रेफरेंसटू गर्ल्स ड्रॉपआउट पूणे आइ आइइ पृ 155
7. जय चंद्रन उषा, 2001, टेकिंग स्कूल्स टू चिल्ड्रेनः भोंगा शाल्स, इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल विकली 36;35द्धए 3347.50,
8. बजट ब्रिफस एसएसए जीओआई 2016–17 वॉल्यूम 8 इश्यू 1 पृ 14

9. बासू, एस, 1975, फिमेल एजूकेशन इन बिहार फ्रॉम 1904 एडीटू द प्रेजेंट डेपी एच डीथेसिस इन एजूकेशन, पटना युनिवर्सिटी पटना पृ 41
10. दूबे आर आर, 2006, सर्वशिक्षा फोर स्पेशल फोकस ग्रुप्स, डेली एक्सेलियर पृ 45
11. शर्मा एस, 2004, ए स्टडी ऑफ इफेक्टिभनेस ऑफ एसएसए इनडिस्ट्रीक्ट हमीर पूरइनटर्म्स ऑफ एकेडमिक एचिभमेंट ऑफ स्टूडेंटस एम एड डिजरटेसन, हिमाचल प्रदेश युनिवर्सिटी शिमला पृ 87
12. अग्रवाल वाइ, 1997, डाटाबेस ऑन एलिमेंट्री एजुकेशन इन इंडिया स्कोप कवरेज एण्ड इश्यूज एनयूइपीए, नई दिल्लीपृ 123
13. सेंसस ऑंफ इंडिया 2011

भारत में दलित साहित्य का दलितोत्थान में योगदान

डॉ0 संजय कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय, भभुआ
कैमूर, बिहार

''हम पैदायशी बौने नहीं थे, हमें बौना बनाया गया।
कभी यह तुम्हारे समाजशास्त्र की मांग थी,
कभी यह तुम्हारे अर्थशास्त्र की मांग थी।
हम तुम्हारी दोनों मांगों को धर्मशास्त्र के नाम पर पूरी करते रहे।''

दलित शब्द की उत्पत्ति 'दलन' से हुई है जिसका तात्पर्य दबाया, कुचला, सताया, शोषित, पीड़ित होता है। ऐसे व्यक्ति समाज में अशिक्षित, असभ्य, घृणित, निंदनीय एवं निरीह माने जाते हैं। इन्हें अभिजात वर्ग के लोग पशु के समान देखते हैं। ये केवल कमाना जानते हैं, खाना नहीं, ये ईंधन का काम करते हैं, इन्हें पेट्रोल समझा जाता है। ऐसे लोगों के पक्ष में जिस साहित्य की रचना होती है वह दलित साहित्य कहलाता है। साहित्य एक ऐसा अभिलेख होता है जो समाज में वैचारिक क्रांति पैदा करता है।

डॉ0 लक्ष्मीनारायण सुधाकर ने लिखा है– ''बाबा साहब विश्व में दो ही वर्ग बताते हैं– धनी और निर्धन। दो ही दुनिया में जाने जाते है। धनी वर्ग को सारी दुनिया में देखा गया है लुटेरा, जिसको जग में लूटा जाता है उसे निर्धन, दलित कहते रहे हैं।''

दलित साहित्य अपने उद्‌भव में नया नहीं है। बस नया है तो केवल शोध की परिधि पर उसका विवेचन। 21वीं सदी में दलित साहित्य की परिधि एवं अवधारणा के सवाल पर दलित साहित्यकारों और पारंपरिक साहित्यकारों में मत भिन्नता दिखाई दे रही है। जहां दलित साहित्यकार ''जाके पॉव न फटे विवाई, सो क्या जाने पीर पराई'' की बात कर दलित साहित्य की रचना के लिए दलित होना जरूरी बता रहे हैं, वही गैर दलित साहित्यकार इसके विपरीत दलितों के दुख, दर्द का वर्णन करने, महसूस करने के लिए दलित होना अनिवार्य नहीं मानते है। इनका तर्क है कि बिना विवाई फटे भी उसके दुख, दर्द और पीड़ा को महसूस किया जा सकता है और सहानुभूतिपूर्वक उसका वर्णन भी किया जा सकता है। अर्थात् स्वानुभूति और सहानुभूति का द्वन्द्व आज भी जारी है।

दलित साहित्य के विषय में अपना विचार रखते हुए प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक डॉ0 नामवर सिंह ने लोकतंत्र की परिभाषा 'ऑफ दी पीपुल, बाई द पीपुल एण्ड फार दी पीपुल' की तर्ज पर स्वीकार किया है कि दलित साहित्य वह है जो दलितों द्वारा, दलितों के बारे में और दलितों के लिए लिखा गया हो जो केवल अम्बेडकरवाद से प्रभावित है उसमें न गांधीवाद की मिलावट है और न ही मार्क्सवाद की लेकिन दूसरे मार्क्सवादी आलेाचक डॉ. मैनेजर पाण्डेय, नामवर सिंह के विचार से अपना विचार भिन्न रखते हैं। उनके मतानुसार दलित साहित्य को दो रूपों में देखा जा सकता है। एक तो दलितों के द्वारा, दलितों के बारे में, दलितों के लिए लिखा गया साहित्य और दूसरा दलितों के बारे में गैर–दलित लेखकों का साहित्य। करूणा और सहानुभूति के सहारे गैर दलित

लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य नहीं है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं लेकिन सच्चा दलित साहित्य नहीं है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति और करूणा से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है। शायद इसीलिए मशहूर दलित लेखक मोहनदास नैमिशराय का मानना है कि दलित साहित्य दलितों का ही हो सकता है क्योंकि उन्होंने जो नारकीय उपेक्षापूर्ण जीवन जिया है वह कल्पना की चीज नहीं है। दलित साहित्य में गुस्सा और नफरत अनुभूति प्रेरित है। दलित साहित्य जख्मी लोगों का दस्तावेज है।

दलितों के साहित्यशास्त्र में हिन्दी साहित्य को बांधना असम्भव है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध, अमृतलाल नागर आदि बड़े रचनाकारों ने दलित शोषण की व्यथा पर तो बहुत अच्छा लिखा है पर वह दलित साहित्य की परिभाषा पर न तो खरा उतरा है न उसे एक खास या सामान्य अर्थ में दलित साहित्य ही कहा जा सकता है।

दलित साहित्य के बारे में प्रकाश डालते हुए ओम प्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि दलित साहित्य उन लोगों की व्यथा का साहित्य है जिन्होंने अस्पृश्यता का दंश झेला है और झेल रहे हैं। इसी बात की पुष्टि करते हुए कंवल भारती भी कहते हैं कि दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है जिन्हें गांव के बाहर हाशिए पर रखा गया है और उनकी जीवन शैली के कोड निर्धारित है कि उन्हें क्या–क्या नहीं करना चाहिए। बाबा साहेब अम्बेडकर के दर्शन से नई दृष्टि प्राप्त कर लिखा जा रहा दलित साहित्य जिसमें निषेध, नकार और विद्रोह की भावना भरी हुई है। दलित साहित्यकार ताराचन्द खांडेकर कहते हैं कि दलित साहित्य अंध श्रद्धा, शब्द प्रमाण्य, ग्रंथ प्रामाण्य, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता एवं धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है।

भारतीय साहित्य के इतिहास में गहराई से उतरकर इन दलितों के सन्दर्भ को देखा जाये तो यह बात ही सामने आती है कि बहुस्तरीय रचनाशीलता में दलित चिंता हमेशा रही है पर यह हाशिये पर ही रही है। प्रधान सृजन चिंताधारा के रूप में उसे प्रतिनिधिकता प्राप्त नहीं रही है और तो और मराठी साहित्य में भी उसे प्रमुखता के साथ नहीं ग्रहण किया गया। महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के चिंतन को आधार बनाकर जो राजनीति समाज नीति पनपी है, उस योजना के भीतर से दलित साहित्य की आवाज उठी है। हर तरह के शोषण, अन्याय, अपमान के विरूद्ध समाज के भीतर से प्रखर स्वर उभरे हैं। इनमें एक स्वर दलित साहित्य भी है।

सदियों से दबे कुचले समाज को इस समाज के चिन्तकों–विचारकों एवं दार्शनिकों ने साहित्य के माध्यम से शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने का कार्य सफलता पूर्वक किया है। अपने काव्य लेखन के माध्यम से उन्होंने पीड़ित समाज के लोगों में न केवल चेतना का संचार किया वरन् उन्हें जागृत करके अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्षशील बनाया है।

वर्ण व्यवस्था का विनाश ओर समता की स्थापना ही दलित साहित्य का लक्ष्य है और आदि काल के सिद्ध कवि इसी चेतना के संवाहक है। युवा दलित साहित्यकार रामचन्द्र दलित चिंतन और दलित साहित्यकार उसे माना है जो बुद्ध के शील, समाधि और प्रज्ञा का पालन करता हो तथा बाबा साहब डॉ0 अम्बेडकर के विचारों को आधार मानता हो, लेखन, विचार और चिंतन का प्रयोजन एवं सरोकार समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व हो। ये कसौटियां फतवे के तहत नहीं बल्कि परिवर्तनकारी दृष्टि के लिए अपेक्षित है।

मध्यकाल के संत कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा वर्ण व्यवस्था, जाति की कुप्रथा तथा

अस्पृश्यता पर करारा प्रहार किया। संत कवियों ने समाज में व्याप्त आडंबर, ढोंग, रूढ़ियों एवं कुरीतियों के खिलाफ साहित्य के माध्यम से उनके निर्मूलन का अभियान छेड़ा। अपने अकाट्य तर्कों एवं दृष्टांतों से उन्होंने भटके हुए दंभी लोगों की आंखें खोल दी।

यह सत्य है कि दलित साहित्य के पीछे जो चेतना काम कर रही है उसके पीछे वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति विद्रोह का बहुत बड़ा हाथ है। यह व्यवस्था सामाजिक असमानता को जन्म देती है। सामाजिक समानता और सम्मान को मानवीय नैतिक गुणों के आधार पर परिभाषित करने की बात यहां पर की जा रही है। दलित समाज को अपमान, शोषण और तिरस्कार परम्परा से मिलता चला आ रहा है। इस अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध समाज से आए प्रबुद्ध लोगों ने मंच के रूप में साहित्य को चुना है।

दलित रचनाओं में आर्थिक समस्याओं की प्रमुखता से अभिव्यक्ति मिली है। रचत रानी मीनू लिखती है कि– ''आर्थिक विपन्नताओं से पग–पग पर घायल होने वाले दलित कवि का संवेदनशील ह्रदय अर्थाभाव के काले अभिशाप से घीरे हुए समूचे वर्ग को देखकर उद्वेलित हो उठता है। दलित रचनाकार अपने समाज को अज्ञानता, दरिद्रता, हीनता से लड़ने की अदम्य इच्छा रखते हुए साहित्य सृजन करता है। उसके अनुभव ही उसकी अभिव्यक्ति है और जीवन के कठोरतम क्षणों में सृजित शब्द उसके लिए महत्वपूर्ण है। मानवीय सरोकारों से जुड़े तमाम विचार उसे मान्य है, वे विचार तो मनुष्य को सम्मान से जीना सिखाते हैं।

दलित आत्म लेखन में दलित रचनाकारों द्वारा दोहरे संघर्ष झेलने पड़ते हैं। जहां एक ओर इन्हें सवर्ण और जातिवादी अहंकार के कारण निर्माण प्रसंगों को झेलना पड़ता है वहीं दूसरी ओर अपने ही समाज के अन्तर्गत विभिन्न सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वास के कारण फैले अंधकार को भी दूर करना पड़ता है।

सामाजिक और आर्थिक सम्पदाओं के एकाधिपत्य एवं इसके सहारे दलित वर्ग को ब्लैकमेल करने के कार्य व्यापारों से सुरक्षित करने की गतिविधि का हिस्सा है– दलित साहित्य। दलित साहित्य में दलित विमर्श को मुखरित करने के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भौतिक समानता के अवसरों के बिना सामाजिक समानता की कल्पना व्यर्थ है। दलित विमर्श में दलित साहित्य में सांस्कृतिक एवं आर्थिक संघर्ष का शंखनाद सर्वत्र गूंजता है।

साहित्य में दलित लेखन का आधार व आन्दोलन केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं है'– वह व्यापक रूप में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक आंदोलन है। वैसे भी साहित्यिक विवेक का आर्थिक विवेक से गहरा रिश्ता है। अतः आज दलित लेखकों को अपनी रचनाशीलता के विकास के साथ–साथ उसके व्यावसायिक आर्थिक सैद्धान्तिक आधार पर निर्माण करना चाहिए। सुपरिभाषित शब्दावली के माध्यम से अलौकिकता के बोध की आड़ में स्वपोषित व्यवस्था बनाये रखने के सारे षडयंत्र शामिल हैं। सम्पन्न और प्रभावशाली छल–प्रपंचनों को ईश कृपा कहकर महिमा प्रदान करने वालों का पटापेक्ष करना भी इस साहित्य का ध्येय है। कहा जाता है कि दलित साहित्य में आर्थिक मूल्य जीवन मूल्य से अविच्छिन्न है। आर्थिक यथार्थ के मध्य अवायविक सम्बन्ध दलित साहित्य की जीवंतता है। दलित साहित्य का उद्देश्य दलित समुदाय में जागृति पैदा करके उनमें स्वाभिमान भरना, अन्याय के प्रति विद्रोह व आर्थिक सशक्तिकरण से सम्बद्ध करना है। आज दलित साहित्य के प्रभाव के कारण ही दलित चेतना के स्वर साहित्य, कला, संस्कृति एवं राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में समानरूप से दिखायी देती है।

देश की आजादी के बाद जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक बदलाव जो दिखाई दे रहा है उसमें दलित साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण है। दलित साहित्य दलितों के उत्थान में काफी सशक्त माध्यम बनकर आया है जो अभी दलितों को और आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करेगा। आर्थिक आत्मशक्ति पर मनुष्य के खड़ा करना दलित साहित्य का निहितार्थ है। तभी वसुधैव कुटुम्बकम के आदर्श को विकीर्ण किया जा सकेगा क्योंकि आधुनिकीकरण, उदारीकरण, भूमण्डलीकरण एवं विश्व मंच पर उभरते बाजारवाद एवं उपभोक्तावाद के साथ आर्थिक संस्कृति के टकराव की भयावह स्थिति को साहित्य के माध्यम से दलित विमर्श के आर्थिक पहलू को मजबूत किया जा सकेगा और तभी सम्पूर्ण मानवता की विजय होगी। अर्थात् सम्पूर्ण भारत बाबा बी0आर0अम्बेडकर के राहों पर चलकर विश्व को नई रोशनी देगा तब भारत अम्बेडकर के सपनों का भारत हो जायेगा, जो विश्व रंगमंच पर अपनी ज्योति जलाता रहेगा।

संदर्भ सूची–

1. हम बौने नहीं, डॉ0 देवेन्द्र दीपक
2. अम्बेडकर टुडे, फरवरी 2010, सं0 डॉ0 राजीव रत्न
3. नव आर्थिकी जनवरी–जून 2010 Vol.18, No.1 सं0 श्रीधर पाण्डेय
4. परीक्षा मंथन (निबंध संग्रह) भाग–3, पृष्ठ 254
5. दलित साहित्य की राजनीति, कृष्णदत्त पालीवाल, हिन्दुस्तान पटना, 01 दिसम्बर, 1997
6. डॉ0 एन0 सिंह, दलित चेतना की कहानियाँ, संकेत अक्टूबर–दिसम्बर 2009, पृष्ठ 32
7. बहुजन बोध, मई 2011 सं0 श्रीमती गीता
8. अम्बेडकर टुडे, अप्रैल 2010, सं0 डॉ राजीव रत्न
9. अम्बेडकर टुडे, अगस्त 2009, सं0 डॉ राजीव रत्न
10. अम्बेडकर टुडे, फरवरी, 2009, सं0 डॉ राजीव रत्न

भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के युवाओं का योगदान

डॉ0 दिनेश सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
भूपेश गुप्त महाविद्यालय
भभुआ, कैमूर बिहार

भारत छोड़ो आन्दोलन जिसे अगस्त क्रांति भी कहा जाता है, का स्थान विश्व की क्रांतियों में सबसे बड़ी जनक्रांति में आता है। यह संख्या, विस्तार एवं प्रभाव की दृष्टि से अमेरिकी क्रांति से महान और फ्रांस की क्रांति से महानतम है। वास्तव में इसे विश्व का महानतम आंदोलन कहा जा सकता है जिसमें करोड़ो स्त्री–पुरुष अपने देश को विश्व के सबसे क्रूर शासन से बचाने के लिए न जाने कहां से एकजुट हो गये थे। जहां अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांति का नारा था– स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व वहीं 1942 के आंदोलन का केवल एक युद्धघोष था– 'स्वतंत्रता' जिसकी प्राप्ति के लिए आंदोलनकारियों ने 'करो या मरो' का संकल्प लिया।

08 अगस्त 1942 को मुम्बई के ऐतिहासिक ग्वालिया टैंक मैदान (अगस्त क्रांति मैदान) से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के उद्घोष 'करो या मरो' के आह्वान पर भारत में सबसे ज्यादा प्रभाव बिहार प्रदेश पर पड़ा और बिहारियों ने अक्षरशः पालन भी किया। यहां के नौजवान ये जानते हुए कि अंग्रेजों के विरोध करने का मतलब स्पष्ट है, सीने पर गोली खाना, फिर भी उन्होंने विरोध किया और गोलियां खाई। भले ही यह आंदोलन ब्रिटिश सरकार द्वारा दमन चक्र चलाकर कुचल डाला गया जिसके कारण अपने उद्देश्य प्राप्त करने में असफल रहा लेकिन अपने प्राणों की आहूति देकर बिहार के युवाओं ने यह सिद्ध कर दिखाया कि स्वतंत्रता की लड़ाई में बिहार पीछे नहीं रहेगा।

क्रिप्स मिशन की असफलता तथा जापान का भारत के द्वारा पर खड़ा हो जाना, गांधी जी को अब असह्य हो चला था। वे अब ज्यादा देर करना नहीं चाहते थे। 1942 के ग्रीष्म में एक विचित्र एवं अनोखी मनः स्थिति में थे। वे लगातार ब्रिटिश सरकार से कह रहे थे कि वे भारत को ईश्वर या अराजकता के भरोसे छोड़ दे।

14 जुलाई 1942 को वर्धा में कांग्रेस कार्य समिति की बैठक हुई और गांधी जी ने अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए 'भारत छोड़ो' का ऐतिहासिक प्रस्ताव पास करवाया। 8 अगस्त 1942 को यह प्रस्ताव बम्बई में संशोधन सहित पारित हुआ। प्रस्ताव पास होने के साथ भारत छोड़ो आन्दोलन शुरू हो गया।

प्रस्ताव पास होने के बाद 9 अगस्त की सुबह होते–होते वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया तथा कांग्रेस को गैर कानूनी संगठन ब्रिटिश सरकार ने घोषित कर दिया। सुबह जनता ने महात्मा गांधी का संदेश ''यह मेरे जीवन का अंतिम संघर्ष होगा, ''करो या मरो'' सुना और सक्रिय हो गई। कांग्रेस कार्य समिति ने आंदोलन के लिए जो 12 सूत्री कार्यक्रम बनाया था, वह जनता को हासिल न हो सका। अतः जनता मनमाने प्रयत्न करने लगी क्योंकि देश नेतृत्व विहीन हो गया था। सारे नेता गिरफ्तार या नजरबन्द हो चुके थे।

आंदोलन चार अवस्थाओं से होकर गुजरा। पहली अवस्था शुरू के तीन चार दिनों तक रही।

इनमें हड़तालें, प्रदर्शन, जुलूस एवं जलसे हुए। पुलिस ने जब ज्यादती की तो जनता भड़क उठी और आंदोलन दूसरे चरण में प्रवेश कर गया। इस दौर में सरकारी इमारतों एवं सम्पत्ति पर आक्रमण किया गया। रेलवे स्टेशनों एवं थानों में आग लगाना, रेलों एवं तारों की लाइनें काटना, प्रमुख कार्यक्रम था। बलिया में तो अंग्रेजी सरकार को उखाड़ कर अस्थाई सरकार ही स्थापित कर दी गई। सेना का प्रयोग आंदोलन दबाने के लिए किया गया, जिसके द्वारा आंदोलनकारियों पर असह्य अत्याचार किया गया। सितम्बर 1942 के बाद आंदोलन तीसरी अवस्था में प्रवेश कर गया। सेना के अत्याचारों से क्षुब्ध आंदोलन कारियों ने भी हथियारों एवं बमों का प्रयोग शुरू किया। इस प्रकार की स्थिति फरवरी, 1943 तक बनी रही। इसके बाद चौथी अवस्था में सरकारी दमन हावी हो गया।

अपनी गिरफ्तारी के समय महात्मा गांधी ने राष्ट्र के नाम एक संदेश प्रसारित कर लोगों से अपील की कि लोग अपने को आजाद समझे, पूर्ण हड़ताल तथा अन्य अहिंसात्मक तरीकों से सरकारी प्रशासन को ठप कर दें तथा मर कर भी राष्ट्र को जिन्दा रखें। इस संदेश के कार्यान्वयन के लिए गांधी जी ने बतलाया कि जनता की शक्ति के अलावा अन्य किसी शक्ति को न मानों, कल करखानों, स्कूल तथा कॉलेजों को तब तक बंद रखों जब तक पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति न हो जाए, सरकार के साथ पूर्ण रूप से असहयोग करो, संचार के सभी साधनों को बरबाद कर दो तथा पुलिस को बाध्य करो कि वे सरकार आदेशों का पालन न करे।

भारत छोड़ों आन्दोलन में अन्य प्रातों की उपेक्षा बिहार का योगदान सर्वोपरि रहा है। गांधीजी सहित अन्य नेताओं के गिरफ्तारी के विरूद्ध सम्पूर्ण बिहार में आग लग गई। जुलूस, प्रदर्शन, हड़ताल एवं गिरफ्तारी का सिलसिला प्रारंभ हो गया। डाकघर, थाना, रेलवे लोइन तथा सरकारी इमारतों को नष्ट किया जाने लगा। बिहार में छात्रों ने शहरी इलाकों और छात्रों के अतिरिक्त अन्य नौजवानों ने ग्रामीण क्षेत्रों में नेतृत्व संभाला। सरकारी तंत्र पंगु बना दिया गया और कुछ समय तक पटना शहर का देश के अन्य भागों से सम्पर्क समाप्त हो गया। सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए दमनात्मक कार्रवाई बहुत ही क्रूर ढंग से प्रारम्भ कर दी लेकिन इसमें भी जनता का उत्साह कम नहीं हुआ। छात्र संघ के कार्यकर्ता घूम–घूमकर विद्यार्थियों एवं नौजवानों को संगठित करने लगे।

11 अगस्त 1942 को बिहार की राजधानी पटना में सचिवालय पर झंडा फहराने के क्रम में सात छात्र ब्रिटिश सरकार के गोलियों का निशाना बनकर शहीद हो गये। ये छात्र जब सचिवालय पर झंडा फहराने के लिए जा रहे थे तो पटना के तत्कालीन डी0एम0डब्लू0जी0 आर्चर ने गोली चलाने का आदेश दे दी। इस गोलीकांड की खबर पूरे बिहार में वन की आग जैसी फैल गयी परिणामस्वरूप बिहार सहित पूरा देश आंदोलित हो गया। 11 अगस्त 1942 को सचिवालय गोली कांड में शहीद होने वाले छात्रों का विवरण निम्न प्रकार से है–

1. उमाकान्त प्रसाद सिन्हा उर्फ रमण जी वल्द राम कुमार सिन्हा, ग्राम– नरेन्द्रपुर, डाकघर– हुसैनगंज, थाना–दरौली, जिला–सारण (राम मोहन राम सेमिनरी की 11वीं कक्षा का छात्र)
2. रामानंद सिंह वल्द लक्ष्मण सिंह ग्राम–शहादत नगर, थाना–मसौढ़ी, जिला–पटना (राममोहनराय सेमिनारी की, 11वीं की छात्र)
3. सतीश प्रसाद झा, वल्द श्री जगदीश प्रसाद झा ग्राम–खड़हरा, थाना–बांका, जिला–भागलपुर (पटना कॉलेजिएट की 11वीं कक्षा का छात्र)
4. जगपति कुमार वल्द श्री सुखराज बहादुर ग्राम–खराठी, थाना–ओबरा, जिला–गया (बी0एन0कॉलेज के द्वितीय वर्ष का छात्र)

5. देवीपद चौधरी वल्द देवेन्द्र नाथ चौधरी ग्राम–जमालपुर, थाना–विश्वनाथ, जिला–सिलहट (मिलर हईस्कूल की 9वीं कक्षा का छात्र)
6. राजेन्द्र सिंह वल्द श्री शिवनारायण सिंह, ग्राम–वनवारीचक, थाना–सोनपुर, जिला–सारण (पटना हाईस्कूल की 11वीं कक्षा का छात्र)
7. रामगोविन्द सिंह वल्द देवकी सिंह ग्राम–दशरथा, थाना–फुलवारी, जिला–पटना (पुनपुन हाईस्कूल की 11वीं कक्षा का छात्र)

11 अगस्त 1942 के दिन किस व्यक्ति ने पटना सचिवालय पर तिरंगा झंडा फहराया? इतिहास में प्रमाणित रूप से यह दर्ज है कि सात नौनिहाल तिरंगा फहराने के लिए सचिवालय गेट से आगे बढ़ने का प्रयास करते हुए शहीद हुए तो वह क्रांतिकारी कौन था, जिसने सचिवालय के गुम्बद पर चढ़कर झंडा फहराया? गोली चलाने के बाद तिरंगा फहराया कि तिरंगा फहराने के बाद गोली चली? इस प्रश्न का जवाब (प्रो0 बलदेव नारायण की पुस्त्क अगस्त क्रांति पेज 63 में) मिल जाता है– उस महान सपूत का नाम रामकृष्ण सिंह पिता खांड़ों सिंह ग्राम–मोकामा, सकरबार टोला, जिला–पटना, पटना कॉलेज में आनर्स का विद्यार्थी है।

11 अगस्त को पटना सचिवालय पर राष्ट्रीय ध्वज फहराया गया। रेलवे लाइन उखाड़ दी गयी, सड़कों पर अवरोध खड़े कर दिये गये और कई थानों को आग लगा दी गयी। मुंगेर में एक विमान को गोली चलाकर नीचे गिरा दिया गया और उसके चालक दल के सदस्यों को पीट–पीटकर मार डाला गया। मुजफ्फरपुर में पुलिस कर्मियों के हथियार छीन लिये गये और लालगंज थाने पर कब्जा कर लिया गया। हाजीपुर और सीतामढ़ी में गोली चलाने की कोशिश करने वाले पुलिस कर्मियों को जिंदा जला दिया गया और उनके हथियार लूट लिये गये। लोगों ने अपनी सरकार बना ली। रामपुर गांव में एक मंदिर से जनता थाने ने काम करना शुरू किया। महनार थाने के अन्तर्गत एक लोकप्रिय नेता मदन झा को जनता की सरकार का प्रमुख बनाया गया और इस सरकार ने 18 अगस्त से 3 सितम्बर तक कार्य किया।

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने बिहार में डॉ0 श्री कृष्ण सिंह, डॉ0 अनुग्रह नारायण सिंह, श्री हरिहर सिंह अब्दुल बारी, क्यूम अंसारी आदि के नेतृत्व में एक मजबूत संगठन का निर्माण किया था।

गांधी जी के करो या मरो के आह्वान का पता जब जयप्रकाश नारायण को हजारी बाग जेल में मिली तो उनका जोश उमड़ने लगा और जेल से भाग निकलने की योजना बनाए जो दिवाली 9 नवम्बर 1942 की रात साकार हुई। योजनानुसार अपने साथियों रामानंद मिश्र, योगेन्द्र शुक्ल, स्वराज नारायण सिंह एवं सूरज नारायण सिंह के साथ जेल की दीवार लांघ कर फरार हो गये। लगातार 45 घंटे चलते–चलते नेपाल में जाकर शरण लिये और आंदोलन को सफल बनाने के लिए एक सशस्त्र क्रांतिकारी संगठन ''आजाद दस्ता'' का गठन किये। यह आजाद दस्ता नवजवानों का विशेष संगठन था जो भूमिगत होकर ब्रिटिश सरकार को चुनौती देता था। यातायात के साधनों को नष्ट करना, औद्योगिक प्रतिष्ठानों को क्षति पहुंचाना, संचार साधनों को नष्ट करना, सरकारी फाईलों को जलाना, गोला बारूद से रेल पटरी उड़ाना इस दस्ते का प्रमुख कार्य था। आजाद दस्ता के माध्यम से जय प्रकाश ने ब्रिटिश सरकार को सशक्त चुनौती दी तथा छापामार युद्ध पद्धति से निर्णायक भूमिका निभाई।

जिस समय बिहार में तोड़ फोड़ की कार्यवाही भयानक रूप से चल रही थी और प्रान्त के प्रमुख नेता जेल के शिकंजे में जकड़ दिये गये थे। उस समय बिहार के कोने–कोने में अजीब दृश्य

बन गया था। बिहारी चाहे वह बूढ़ा हो या बच्चा या नौजवान, गांधी जी का जयकार करते हुए हड़ताल पर उतर आये और आंदोलन में कूद कर गांधी जी के आदेश का अक्षरशः पालन किये जो 23 जून, 1942 को बुनियादी विद्यालय, सेवा ग्राम, बजाज वाड़ी के दीक्षान्त भाषण में ''..... हिन्दुस्तान में भयंकर ज्वालामुखी फूटेगी। तुम लोग उसके साक्षी रहना और जब वह समीप आ जाय तो उसमें कूद पड़ना.....'' दिये थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत छोड़ों आन्दोलन में बिहार के युवाओं ने जो अपनी भूमिका निभाई वह पूरे देश में ऐसी भूमिका किसी अन्य प्रदेश में देखने को नहीं मिलती है। यह अद्वितीय है, बेमिसाल है। जितना बिहार की जनता ने की यदि उसका आधा भी हिन्दुस्तान की अधिकांश जनता एक साथ कर दिखाती तब अगस्त आंदोलन का इतिहास ही कुछ और होता। एक प्रांत (बिहार) का अकेला आजाद होकर अंग्रेजी सरकार की ताकत के आगे सर उठाये रखना नामुमकिन था। उसे तो हिन्दुस्तान के पिछड़े हुए हिस्सों ने पछाड़ दिया।

भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के युवाओं की भूमिका इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है जिस पर बिहार सहित पूरे देश को गर्व है।

संदर्भ सूची–

1. आधुनिक भारत का इतिहास, वी0एल0ग्रोवर
2. आधुनिक भारत, सुमित सरकार
3. नव आर्थिकी सं0 श्रीधर पाण्डेय, **Vol.16 No. 1** जनवरी–जून, 2008
4. भारत छोड़ो आन्दोलन : विश्व की सबसे बड़ी जन क्रांति, के0के0खुल्लर, रोजगार समाचार, 9–15 अगस्त, 2003
5. अगस्त क्रांति, प्रो. बलदेव नारायण

दलितोत्थान के लिए समर्पित योद्धा–बाबू जगजीवन राम

डॉ0 चित्रलेखा कुमारी
ग्राम–अमेठ पोस्ट–भिटी
जिला–कैमूर, बिहार

जगजीवन राम जिन्हें हम प्यार से बाबूजी कहते हैं, भारत के एक महान स्वतंत्रता सेनानी, संगठनकर्ता एवं सामाजिक न्याय के अथक योद्धा थे। इन्होंने कभी अन्याय से समझौता नहीं किया बल्कि जीवन पर्यन्त दलितों, शोषितों एवं पीड़ितों के सम्मान के लिए संघर्ष करते रहे। इनका व्यक्तित्व एवं चरित्र एक राष्ट्रोन्मुख क्रांतिधर्मी राजनीति के आवें में ढ़लकर तैयार हुआ था। राजनीति में त्याग शील और जनहित कारी दूरदर्शिता की जो मिसाल जगजीवन राम के जीवन चरित में मिलती है, वह अन्यतम है। देश की गरीबी और गरीबों के दमन–शोषण की पीड़ा जगजीवन राम ने अपने हाड़–मांस में महसूस की थी। उसी पीड़ा से देश की दलित–शोषित जनता को त्राण दिलाने का संकल्प लेकर और अपने अनवरत संघर्ष से उपर उठकर, वे राजनीति में आये थे। राजनीति से उन्होंने कभी सता की मांग नहीं की बल्कि सता ने ही राजनीति में सदा उनका लाभ लिया।

5 अप्रैल 1908 को बिहार के भोजपुर (तत्कालीन शाहाबाद) जिला के चंदवा गांव में साधारण दलित परिवार में जन्म लेने के बाद भी उन्होंने अपना लक्ष्य हमेशा ऊँचा बनाये रख। छात्र जीवन की शुरूआत करने से पहले ही इनका झुकाव पारिवारिक वातावरण के अनुरूप ही धार्मिक वृतियों में था। जीवन के शुरूआती दौर में राजनीतिक हलचल से दूरी बनाये रखने के बादजूद वह भारतीय सामाजिक व्यवस्था में फैले अस्पृश्यता के प्रश्न पर काफी सुलझा हुआ दृष्टिकोण रखते थे। वे इस विषय में गांधीजी के विचार से काफी सहमत थे। अस्पृश्यता को पग–पग पर महसूस किये थे। इसलिए इस खतरनाक रोग को जड़ से मिटाने का संकल्प इनके जीवन में निरंतर दृढ़ होता गया। इसके समाधान के लिए अछूतों को संगठित है। अध्ययन के दौरान बहुत अच्छे ढंग से समझ गये थे कि अस्पृश्यता मूल वैदिक व्यवस्था का अंग नहीं था, इसे कालांतर में समाज व्यवस्था में निहित स्वार्थ द्वारा इसे प्रतिरोपित किया गया है। गांधीजी के मतानुसार इनका भी मानना था कि इस समस्या से निपटने के लिए हिन्दू समाज में नवीन शक्ति संचार करने की जरूरत है।

बाबू जगजीवन राम समतामूलक समाज की स्थापना चाहते थे जिसमें छुआछुत, अस्पृश्यता, ब्राह्मण–गैर ब्राह्मण, उँच–नीच, आदि का भेदभाव न हो। वे समरस समाज के हिमायती थे जिसके लिए जीवन पर्यन्त लड़ते रहें है। विद्यालयी शिक्षा के दौरान छुआछुत और जाति प्रथा का दंश जो इन्होंने भोगा था, उसका कटु अनुभव था। दलितों को पानी पीने के लिए अलग घड़ा होना, छात्रावास बाल में ब्लॉक सर्वेन्ट द्वारा इनके वर्तन धोने से इंकार कर देना, नाई द्वारा बाल काटने से इंकार कर देना, ब्राह्मण टोला या सवर्णों की वस्ती से अपने सिर पर छाता ओढ़कर बैलगाड़ी या किसी सवारी पर बैठकर नहीं गुजरना छात्र जीवन की ये घटनाएँ बाबू जगजीवन राम के अन्दर से झकझोर कर रख दी थी। इनके मानस पटल पर इसका इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि छात्र जीवन से ही सामाजिक विषमता के खिलाफ आवाज बुलन्द करना शुरू कर दिये। इस निमित बिहार प्रदेश हरिजन सेवक संघ, अखिल भारतीय रविदास सम्मेलन, अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ एवं खेतिहार मजदूर संघ नामक संगठनों का भी निर्माण किये।

बाबू जगजीवन राम जाति व्यवस्था के खिलाफ थे। वे मानववादी थे, मानववादी व्यवस्था चाहते थे। योग्यता के प्रबल समर्थक थे। इनका कहना था कि योग्य व्यक्ति को पद मिलना चाहिए। यदि भंगी का बेटा योग्यता रखता हो तो मंदिर का पुजारी बनाया जाना चाहिए, वही यदि ब्राह्मण का बेटा योग्यता नहीं रखता हो तो उसे पुजारी नहीं बनाया चाहिए। मंदिर में दलितों के प्रवेश की रोक हटना चाहिए कर्म के आधार पर कार्यों का बटवारा होना चाहिए न कि जाति के आधार पर। मनुष्य कर्म से महान होता है न कि जाति से। भारतीय समाज से वर्ण व्यवस्था एवं जाति–व्यवस्था का खत्म करने के प्रबल हिमायती थे। वे केवल दलितों का ही हित नहीं चाहते थे बल्कि सवर्ण, पिछड़े सहित सभी जाति के गरीब लोगों का हित चाहते थे। वे गरीबों के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि एक अमीर (पूँजी पति) व्यक्ति अपनी ही जाति के गरीब (सर्वहरा) का भला नहीं कर सकता है। समाज में दो ही जाति है–एक अमीर की एवं दूसरी गरीब की। गरीबों की दुनिया ही अलग है चाहें वह किसी भी जाति से सम्बन्ध रखते हों। इसलिए गरीबों के हित मेंकाम किया जाना जरूरी है जिससे समता मूलक समाज की स्थापना होगी, समरसता आयेगी तथा गरीब–अमीर की चौड़ी खाई कम हो जायेगी।

सामाजिक समरसता बनाने के लिए तथा जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए बाबू जगजीवन राम अन्तर–जातीय विवाह के पक्षधर थे। वे केवल कहना ही नहीं जानते थे बल्कि करना भी जानते थे। प्रबल प्रमाण सुपुत्र सुरेश कुमार की शादी सिख धर्म में हुई तथा सुपुत्री श्रीमती मीरा कुमार (सांसद सह लोकसभा अध्यक्ष) की शादी कुशवाहा जाति के श्री मंजूल कुमार के साथ हुई है।

बाबू जगजीवन राम शिक्षा प्रेमी थे। वे शिक्षा को विकास की पूंजी मानते थे। शिक्षा के अभाव में देश एवं समाज का विकास संभव नहीं है। शिक्षा को जन–जन तक पहुँचाना चाहते थे। नारी शिक्षा के प्रबल हिमायती थे। देश में जब तक महिलाएँ शिक्षित नहीं होगी तब तक देश की आधी आबादी अशिक्षित रह जायेगी। जिससे देश का सर्वागींण विकास नहीं हो पायेगा। वे इ स मत के प्रबल समर्थक कि एक लड़का पढ़ता है तो एक व्यक्ति शिक्षित होता है। जबकि एक लड़की पढ़ती है तो पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है।

बाबू जगजीवन राम दलित वर्ग को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित कर हिन्दू समाज से तोड़कर अलग करने में विश्वास नहीं रखते थे। वे उस उपेक्षित दलित समाज को उसके सारे सामाजिक और राजनीतिक अधिकार दिलाना चाहते थे ताकि वह जिस समाज में अब तक उपेक्षित–दलित रहा था, उसमें समता और सम्मान का स्थान पा सके। इसके लिए समाज–सुधार का काफी कार्य किये। इनमें प्रमुख रूप से दलितों, अछूतों को मंदिर में प्रवेश की रोक हटवाना, महत्वपूर्ण कार्य था।

दलितों के धर्म परिवर्तन के मुद्दे पर डॉ0 वी0 आर0 अम्बेडकर के विचारों से वे कदापि सहमत नहीं थे। इनका कहना था कि धर्म परिवर्तन से दलितों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन नहीं आएगा क्योंकि पूर्व में धर्म बदलने वाले लोगों की दूसरे धर्मों में स्थिति अब भी दयनीय है। डॉ0 अम्बेडकर जब दलितों को धर्मान्तरण के प्रेरित कर रहे थे तो बाबू जगजीवन राम भी दलित बस्तियों में घूम–घूमकर उनकों समझाते थे कि हिन्दू धर्म में रहने में ही भलाई है। उन्हें हिन्दू धर्म में रहकर ही अपने हक की लड़ाई लड़नी चाहिए। धर्म–परिवर्तन अपनी जड़ों से पलायन है। बाबूजी ने बिहार में स्थान–स्थान पर सम्मेलन कर पूरी स्थिति स्पष्ट की और दलितों को धर्म परिवर्तन करने से रोका और इस कार्य के लिए डॉ0 अम्बेडकर की खुलेआम भर्त्सना की। बाबूजी ने कहा कि हिन्दू धर्म से

दलितों का अलग होना समस्या का हल नहीं है। हमें उसमें रहते हुए समस्या का समाधान खोजना चाहिए।

सामाजिक विषमता के कारण दलितों, अछूतों एवं कुछ पिछड़ी जातियों की आर्थिक हालत बिगड़ती गई है और आज वे गरीबी रेखा के नीचे ही नहीं हैं बल्कि सम्पूर्ण रूप से भिखमंगे जैसे है। सामाजिक, आर्थिक विषमता के कारण उन्हें मानवोचित स्थान पर नहीं रहने दिया गया है। आर्थिक विषमता मिटाकर ही एक आधुनिक न्यायोचित समाज का विकास किया जा सकता है। समाज में परम्परा यह है कि जो श्रम करता है उसे सम्मान, भरपेट भोजन नहीं मिल पाता है, जो श्रम नहीं करता है वह सम्मान पाता है तथा उसका कुता, दूध में स्नान करता है। इस परम्परा को तोड़ना होगा। ''सबै भूमि गोपाल की'' मान्यता होनी चाहिए। बाबूजी ने कहा कि सब भूमि को जनता की भूमि बनाना होगा। भूमि का राष्ट्रीयकरण हो तभी परिश्रम करने वालों को संतोष मिलेगा और भूमि के राष्ट्रीयकरण के अतिरिक्त सरकारी और गैर सरकारी नौकरियों में एक परिवार से एक से अधिक व्यक्ति को काम नहीं दिया जाय। प्रत्येक परिवार में कम से कम एक व्यक्ति को नौकरी या कोई रोजगार अवश्य दिया जाए।

बाबू जगजीवन राम समाजवाद के प्रबल समर्थक एवं पुँजीवाद के प्रबल विरोधी थे उनका मत था कि पूंजीवाद और जातिवाद एक ही विचारधारा को बढ़ावा देते हैं जिससे करोड़पति का पुत्र करोड़पति एवं ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण होता है। पूँजीवादी व्यवस्था में अमीर और अमीर बनता है गरीब दिन प्रतिदिन गरीब ही बनता जाता है। समाजवादी व्यवस्था के पक्षधर होने के कारण उत्पादन के साधनों पर सरकार का नियमन, एवं नियंत्रण होना देखना चाहते थे। उनका मानना था कि भौतिक साधनों पर समाज का स्वामित्व होना चाहिए जिससे शोषण की परम्परा रूकेगी परिणामस्वरूप शोषित, दलित पीड़ितों की आर्थिक स्थिति में सुधार होगा एवं देश का विकास होगा।

सर्वहारा वर्ग के विकास के लिए औद्योगिक क्षेत्र में लघु उद्योग एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना चाहते थे। जिससे श्रमिकों को अधिक काम मिल जायेगा। बेरोजगारी भी दूर हो जायेगी और उनकी आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। इसलिए वे देश में ज्यादा से ज्यादा इन लघु एवं कुटीर उद्योग को बढ़ावा देना चाहते थे। श्रमिकों का ज्यादा से ज्यादा भलाई चाहते थे। श्रम मंत्री रहतें हुये श्रमिकों के लिए कानून भी बनवाएँ जिससे इनकी स्थिति में काफी सुधार हुआ। इनका मत था कि जब तक श्रमिक आर्थिक दृष्टि से मजबूत नहीं होगे तब तक देश विकास नहीं कर सकता है। दलित, गरीब, शोषित, पीड़ित एवं पिछड़ों को मिल जुलकर काम करने के लिए छोटे–छोटे संगठन बनाने के लिए प्रेरित करते थे। वे सहकारिता के समर्थक थे। सहकारिता से श्रमिकों का विकास होगा, इसके प्रति उनकी यह स्पष्ट अवधारणा थी।

बाबू जगजीवन राम स्वतंत्र भारत में 1957, 1962, 1967, 1971, 1977, 1980, 1984 के सभी चुनाव सासाराम लोकसभा क्षेत्र बिहार से जीतकर एक विश्व कीर्तिमान स्थापित कर दिये। इस दौरान केन्द्रमें श्रममंत्री, संचार मंत्री, रेलमंत्री, खाद्य एवं कृषि एवं सिचाई मंत्री, प्रतिरक्षा मंत्री एवं उपप्रधानमंत्री के पद पर कार्य करते हुये सुयोग्य एवं बेदाग प्रशासक की अद्‌भुत मिसाल कायम किये। अपनी प्रशासनिक निपुणता से बाबूजी ने राष्ट्र निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया और जिस मंत्रालय को संभाला उसका कार्याकल्प भी कर दिया। अपने जीवन में कभी भी लोकतांत्रिक मूल्यों से समझौता नहीं किये। वह सच्चे अर्थों में भारत निर्माता थे। बाबू जी के सामाजिक एवं आर्थिक विचार आज भी प्रासंगिक है। इनके विचारों को देश में यदि पूर्णतः लागू किया गया हो तो आज जो

समस्या देश के सामने (आतंकवाद, नक्सलवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार) विकट रूप में खड़ी है वह शायद नहीं होती बल्कि समतामूलक एवं समरस समाज का निर्माण हुआ होता जिससे भारत वर्षों पहले विकसित देशों की श्रेणी में आ जाता।

बाबू जी की सोच दूरदर्शी थी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाबू जगजीवन राम सता संघर्षों से पेरे आमजन के कल्याण को समर्पित रहने वाले नेता थे। अपने जीवन काल में बिहार के साथ ही साथ देश के लोगों के सामाजिक आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिये। तभी तो आज भी बिहार के निवासी उन्हें उनके नाम से पुकारने के बजाय आदर सूचक शब्द बाबूजी का प्रयोग करते है।

राष्ट्रकवि मैथिलीकरण गुप्त के शब्दों में

''तुल न सके धरती–धन–धाम
धन्य तुम्हारा पावन नाम,
लेकर तुम सा लक्ष्य ललाम
सफल काम जगजीवन राम।''

संदर्भ सूचीः–

1. कैमूर के जनप्रिय प्रतिनिधि : बाबू जगजीवन राम, डॉ0 गोवर्द्धन सिंह, कैमूर जिला दर्पण, 17 मार्च, 2011
2. वंचित वर्ग की राजनीतिक आवाज, महेश जोशी, दैनिक जागरण, पटना 6 अप्रैल, 2011
3. बाबू की जीवनी के आइने में भारतीय राजनीति, संतोष कुमार सिंह, प्रभात खबर पटना, 10 जुलाई, 2010
4. सामाजिक समरसता के योद्धा जगजीवन राम, राजेन्द्र कृष्ण, हिन्दुस्तान, पटना 06 जुलाई 2011
5. जगजीवन राम : चारधाम में दलितों का प्रवेश, परिपूर्णानंद पैन्यूली, हिन्दुस्तान, पटना, 07 अप्रैल 2009
6. सामाजिक समता के अग्रदूत बाबू जगजीवन राम, डॉ0 सुनील जोगी, डायमण्ड प्रकाशन, नई दिल्ली
7. मुक्ति के अग्रदूत बाबू जगजीवन राम, ई0 राजेन्द्र प्रसाद, प्रकाशक जगजीवन, आश्रम ट्रस्ट, नई दिल्ली
8. इमरजेंसी के दौरान दलित कोई मुद्दा नहीं थी, तुलसी राम दलित चिंतक, जे0 एन0 यू0 प्रभात खबर, पटना 10 जुलाई 2010
9. अपनी प्रतिभा से सबको प्रभावित किय, डी0पी0 यादव, पूर्व लोकसभा सांसद, प्रभात खबर, पटना 10 जुलाई 2010

घड़वा समुदाय – एक विलक्षण लोक जीवन शैली

डॉ0 बृजेश पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
श्री अग्रसेन कन्या पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी

सामान्य धारणा यह है कि कला के सृजन एवं आस्वाद में सहजप्रवृत्ति एवं सहजानुभूति तथा साथ ही संवेदनशीलता एवं कल्पना शक्ति की प्रधानतम् भूमिका रहती है व कला, कला के लिए होती है किन्तु लोक जीवन की वास्तविकता इससे भिन्न है। लोक जीवन के सभी पक्ष उपयोगितावादी सामाजिक क्रिया की व्यापक धारा में अन्तर्निहित होते हैं, इसमें (लोक जीवन) कला न केवल सामाजिक संचरना को मूर्त्त रूप देती बल्कि इसकी (कला) प्रत्यक्ष सामाजिक उपयोगिता भी होती है। लोक जीवन में कलाकार का आनन्द नये विचारों एवं शैलियों के सृजन में नहीं किन्तु प्रचलित कला प्रकारों के पुनरोत्पादन में निहित रहता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मूर्ति कला के लिए विश्व प्रसिद्ध घड़वा समुदाय है।

घड़वा समुदाय भारत की ह्रदयस्थली मध्य प्रदेश के दक्षिण पूर्व कोने में स्थिति बस्तर जिले के जगदलपुर, कोण्डागाँव, नारायणपुर, कोटगाँव एवं एराकोट तहसील व उड़ीसा के कोरापुट जिले के कोप्पाड़ तहसील में निवास करता है। सामान्यतः घड़वा समुदाय की उत्पत्ति घसिया जाति से मानी जाती है जो राजघरानों में घोड़ों के लिए घास लाने का कार्य करते थे। वे घसिया जो मूर्ति निर्माण का कार्य करने लगे, वे घड़वा कहलाये।

घड़वा लोग मुख्यतः बेलमेटल (घण्टा धातु) की मूर्तियाँ बनाते हैं, परन्तु कुछ घड़वा मिट्टी एवं लकड़ी की भी मूर्तियाँ बनाते हैं। ये लोग बेल मेटल की मूर्तियाँ दो प्रकार से बनाते हैं––

1. पोल विधि
2. ठोस विधि

पोल विधि में सर्वप्रथम काली मिट्टी (पहारा या दीमक) में भूसी मिलाकर मूर्ति का स्वरूप निर्मित करते हैं। इसके सूखने के पश्चात् इस पर चिकनी मिट्टी (रूई मिट्टी) का लेप करते हैं। तत्पश्चात् जंगल से प्राप्त मोम को शुद्ध करके, पिस्टन (पिचकी) की सहायता से उसके धागे तैयार करते हैं तथा इन धागों को सौकान्ता (शाही का कांटा) की सहायता से मिट्टी के मॉडल के ऊपर मनोवांछित नक्काशी का कार्य करते हैं। इसके बाद मोम के साँचे के ऊपर कोयला मिश्रित रूई मिट्टी बिना कोयले के रूई मिट्टी तथा भूसी मिट्टी (पहारा मिट्टी+धान की भूसी) का क्रम से लेप करते हैं तथा इसमें द्रवित बेलमेटल की प्रविष्टि के लिए मोम या बांस की लकड़ी की सहायता से नलिका का निर्माण करते हैं। सांचा सूखने के पश्चात् इस पर रूई मिट्टी की एक परत चढ़ाते हैं, जिसे पोती लगाना कहते हैं। इसके बाद सांचे को भट्टी में पकाया जाता है, इस रिक्त स्थान की मूर्ति बेल मेटल को पिघलाकर नालिका के माध्यम से मूर्ति में प्रवेश कराकर की जाती है। बेलमेटल के जम जाने के पश्चात् मूर्ति के ऊपर से मिट्टी को साफ करके ब्रश की सहायता से इसको चिकना स्वरूप प्रदान करते हैं।

ठोस विधि में सबसे पहले मोम का ढाँचा तैयार किया जाता है, जिसके ऊपर उपर्युक्त प्रकार से मिट्टी की सतह चढ़ाते हैं। अन्य सभी क्रियाएँ पो विधि की तरह होती है।

प्राचीन काल में घड़वा लोग जनजातियों की माँग पर उनके देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनाते थे, परन्तु वर्तमान में ये लोग सरकारी, गैरसरकारी, देशी व विदेशी संस्थाओं की माँग पर मूर्तियों का निर्माण कर अपेक्षाकृत अधिक धनार्जन कर रहे हैं।

घड़वा समुदाय के लोगों का जीवन–चक्र अपने आप में एक अनोखापन लिए हुए है। इस समुदाय में जब कोई बच्चा जन्म लेता है तो जन्म के नौ दिन पश्चात् 'छठी' मनाया जाता है, जिसमें माता एवं शिशु को स्नान कराकर नये वस्त्र धारण कराये जाते हैं। छठी के दिन ही 'नामकरण संस्कार' होता है, जिसमें ज्योतिषी या मुखिया व घर के बड़े बुजुर्ग की मुख्य भूमिका होती है। इस दिन शिशु को जो नाम दिया जाता है, सामान्यतया उसी नाम से उसे पुकारा जाता है, लेकिन माता–पिता कभी–कभी अपनी इच्छानुसार दूसरा नाम भी रख देते हैं।

नवजात शिशु की आयु जब चार माह की हो जाती है तो उसे अन्नप्राशन (भात खिलाना या जूठा करना) किया जाता है, जिसमें कोई बुजुर्ग या माता–पिता बच्चे को नये बर्तन में खीर खिलाते हैं। इस अवसर पर सगे सम्बन्धियों को भोज दिया जाता है। एक वर्ष से लेकर तीन वर्ष की आयु के बीच मुण्डन संस्कार होता है। सामान्यतया यह संस्कार किसी देवस्थान पर होता है।

इस समुदाय में ग्यारह वर्ष की अवस्था में लड़कियों का काण्डाबार तथा लड़कों का बरूआ कर दिया जाता है। इस संस्कार में लड़की या लड़के को मण्डप में तेल–हल्दी लगाया जाता है। उनको अकेले मण्डप के फेरे दिलवाये जाते हैं। इस दिन समुदाय के सदस्यों को खाना खिलाया जाता है तथा सल्फी पिलाई जाती है। घड़वा समुदाय में इस संस्कार का महत्व इस तथ्य में निहित है कि इस संस्कार से गुजरे लड़के या लड़की किसी भी लड़के या लड़की को पसन्द कर माता–पिता की मर्जी से शादी कर सकते हैं। माता–पिता की मर्जी से यदि विवाह होता है तो विवाह पूर्व 'महाला' नामक अनुष्ठान होता है, जिसमें लड़का व उसके परिवार के लोग शराब, भंजिया, बोबो (दाल का बड़ा) व लाई चना लेकर लड़की को देखने उसके घर जाते हैं। यह अनुष्ठान तीन बार में सम्पन्न होता है, पहले दो बार में केवल परिवार के ही सदस्य जाते हैं जबकि अन्तिम बार परिवार के सदस्यों के साथ मुखिया भी जाता है। तीसरी व अन्तिम महाला के दिन ही माँगनी–सुपारी (मंगनी) का दिन निश्चित किया जाता है। मांगनी–सुपारी में कुछ खाद्य सामग्री, श्रृंगार सामग्री तथा अपने मुख्य पेय सल्फी के साथ लड़के वाले लड़के के घर जाते हैं। इसके बाद शादी की तिथि निर्धारित की जाती है। शादी के दो दिन पूर्व ही लड़के वाले लड़की के घर चिड़चिड़ी बारात लेकर जाते हैं। लड़की के घर में ही लड़के की अलग–अलग मण्डपों में हल्दी की रस्म होती है। हल्दी की रस्म के पश्चात् शादी होती है। विवाहोपरान्त वर–वधू शीतला माता के मन्दिर जाते हैं, तत्पश्चात् दूल्हा, दुल्हन के साथ अपने घर वापस आ जाता है।

घड़वा समुदाय में मृतक को दफनाने की प्रथा है, जिसे ये लोग माटी देना कहते हैं। जिस घड़वा परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, उस परिवार में तीन दिन तक भोजन नहीं बनता, बल्कि वे लोग अपने सगे सम्बन्धियों के घर से भोजन प्राप्त करते हैं। मृत्यु के तीन दिन बाद 'पीत चबाने' की क्रिया होती है, जिसके बाद घर में भोजन बनने लगता है। इक्कीस या इक्तीस दिन बाद 'दुख मनाऊ' क्रिया होती है जिसमें घर के सदस्य नहाते हैं और समाज के लोगों को भोजन कराते हैं। इस अवसर पर पण्डित एवं मृतक के भांजे को दान दिया जाता है। इस क्रिया के ठीक अगले दिन 'तबजो पानी' नामक संस्कार होता है जिसमें मृतक के परिवार के सदस्यों के ऊपर कुएँ

से पानी निकालकर दो–तीन बार डाला जाता है, इसके बाद वे स्वयं स्नान कर लेते हैं। मृतक के अन्तिम संस्कार की क्रिया इस प्रकार सम्पन्न हो जाती है।

घड़वा जीवन चक्र की भाँति ही इनकी धार्मिक क्रिया कलाप भी विलक्षण है। इस समुदाय में धार्मिक क्रिया–कलाप से सम्बन्धित चार प्रमुख व्यक्ति होते हैं–पुजारी (जो मन्दिर एवं घरों में पूजा कराता है), गुनिया (झाड़–फूँक के द्वारा लोगों के दुःख–दर्द दूर करता है), सिरहा (जिसके सिर पर माता आया करती हैं), पंगनहा (जादू टोना का कार्य करता है)। घड़वा सामान्यतः दतेश्वरी, शीतला, हिंगलाजिन माता की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त ये शिव एवं हनुमान जी के मन्दिरों में भी जाते हैं।

धर्म घड़वा समुदाय के समस्त पक्षों को प्रभावित करता है। इनके प्रमुख त्यौहार देवी–देवताओं के पूजा अर्चना पर ही आधारित है, जैसे नया छानी त्यौहार नये धान की पूजा, अमुस त्यौहार में प्रमुख देवी–देवताओं की पूजा, माटी देव की पूजा, मड़ई आदि भी इसी प्रकार के त्यौहार हैं।

धर्म सामाजिक नियंत्रण का भी एक साधन है। इनमें यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी कारणवश जूते से मार देता है तो दोनों व्यक्तियों को समाज द्वारा अछूत मान लिया जाता है। कोई भी इनका छुआ खाता–पीता नहीं है, न ही इन्हें सार्वजनिक स्थान पर जाने की इजाजत होती है। इन व्यक्ति को शुद्ध करने की एक लम्बी प्रक्रिया होती है। जिसमें घड़वा पंचायत एवं मन्दिर का पुजारी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

घड़वा समुदाय में धर्म का इतना प्रभाव है कि वे आज के वैज्ञानिक परिवेश में भी अपनी बीमारियों का कारण दैवीय प्रकोप को ही मानते हैं तथा बीमारियों से उबरने के लिए विभिन्न प्रकार के धार्मिक क्रिया–कलाप सम्पन्न करते हैं।

घड़वा समुदाय में किसी व्यक्ति के शरीर में किसी बीमारीवश कीड़ा पड़ जाता है तो उस व्यक्ति को अछूत मान लिया जाता है तथा ऐसा माना जाता है कि यह उसके पूर्वजन्म के बुरे कर्मों का फल है। ऐसे व्यक्ति का पूरा परिवार अछूत मान लिया जाता है। इन्हें शुद्ध करने का कार्य नाईक द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इसमें अछूत व्यक्ति का सिर मुड़वाते हैं तथा तालाब में स्नान करवाते हैं। इसके बाद उसे सबसे सामने हाथ जोड़वा कर बैठाते हैं, चांदी, सोना, तांबा तथा लोहा की चार कील को गर्म करके सात–सात बार उसके मुंह में छुआते हैं। इसके बाद नाईक के साथ सभी पंचों का पैर धुला जाता है, इससे एकत्रित पानी में आम की डाल तथा तुलसी का पत्ता डालकर व्यक्ति को पिलाया तथा उस पर छिड़का जाता है। इस प्रकार व्यक्ति को शुद्ध मान लिया जाता है।

घड़वा समुदाय में आधुनिक तथा परम्परागत दोनों ही राजनीतिक प्रणालियाँ मौजूद हैं। आधुनिक राजनीतिक प्रणाली के तहत इनमें त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू है व इनके परम्परागत राजनीतिक व्यवस्था में मुख्यतः तीन सदस्य होते हैं–(1) नाईक (न्याय करने वाला), (2) पाईक (पानी गिराने वाला), (3) ठेंगा (लोगों को बुलाने वाला)। इनके अलावा इस समूह में 'कोरवार' (कोतवाल) व 'पटेल' भी होते हैं जिनका चयन सरकार द्वारा किया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि घड़वा समुदाय न केवल अपने बेलमेटल की मूर्ति निर्माण कला में विलक्षण हैं वरन् इसके सामाजिक एकता, समरसता एवं अनुकूलता बनाये रखने वाली सामाजिक संस्थाएँ, वैवाहिक क्रिया विधि, धार्मिक कर्मकाण्ड व राजनीतिक संगठन भी विलक्षणता लिए हुए है।

सन्दर्भ

1. मजूमदार एवं मदन – सामाजिक मानवशास्त्र परिचय
2. हीरा लाल रसेन्द्र – बस्तर
3. उमाशंकर मिश्र – इवोल्यूशन ऑफ आर्ट
4. देवी प्रसाद – शिक्षा का वाहन कला
5. दीपक फुलवारी – बस्तर आभूषण
6. टी0सी0 अग्रवाल – ह्यूमन एज ऑफ बस्तर
7. एच0 टीमनर – आर्ट ऑफ इण्डिया एशिया
8. पी0 डी0 शर्मा – आदिवासी विकास एवं सैद्धान्तिक विवेचन
9. आर0 सी0 वर्मा – इण्डियन ट्राइवल थियरी एण्ड फ्यूचर
10. बस्तर विकास पुस्तिका – 1998
11. सन्देश (पत्रिका)

❖❖❖

Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 6, No. 12, Jan-June, 2020 ISSN : 2394-2878

जनसंख्या नियन्त्रण और कानून–भारत के सन्दर्भ में

डॉ0 रश्मि नायक
असिस्टेंट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान सुधाकर महिला पी.जी.पाण्डेयपुर, वाराणसी

2019 में जनसंख्या नियन्त्रण विधेयक को बीजेपी सदस्य राकेश सिन्हा द्वारा एक नीजि विधेयक राज्यसभा में प्रस्तुत किया गया। स्वतंन्त्रता के पश्चात से ही इस पर सख्त कानून बनाने की मॉग की जा रही हैं। और तब से लेकर आज तक अभिशाप बन चुकी जनसंख्या को नियन्त्रित करने के लिए अनेक नीतियां,योजनायें बनायी जा चुकी हैं। इस शोघ–पत्र द्वारा शोघार्थिनी ने यह बताने का प्रयास किया हैं कि सख्त कानून के साथ–साथ समाज में शिक्षा और जागरुकता की ज्यादा आवश्यकता हैं। दुनिया की बढ़ती जनसख्या एक समस्या है । अभी धरती पर जितनी आबादी है। उसकी प्राकृतिक जरूरतो जैसे स्वच्छ हवा, और पीने योग्य पानी की उपलब्धता को देखे तो धरती अभी छोटी है। मानव का बोझ ढोने के लिए । आज की धरती से 1.7 गुना बड़ी धरती हमारे पास होनी चाहिए ,सबको शिक्षा,रोटी, कपड़ा, मकान,साफ पानी और स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने के लिए ।

विज्ञान में विशेष प्रजाति के अंतः जीव प्रजनन के संग्रह को जनसंख्या कहते हैं। समाजशास्त्र में इस मनुष्यो का संग्रह कहते हैं। जन्मदर को कम करके जनसंख्या वृद्वि में कटौती करने को ही आमतौर पर जनसंख्या नियन्त्रण माना जाता हैं। कृत्रिम तरीको का उपयोग करके जनसंख्या वृद्वि की दर को बदलने को जनसंख्या नियन्त्रण कहते हैं। कुछ वर्षो पहले तक जनसंख्या वृद्वि की दरको बढाने का लक्ष्य होता था,किन्तु अब जनसंख्या वृद्वि की दर को कम करना लक्ष्य हैं। प्रजनन नियन्त्रण करने को व्यक्ति के व्यक्तिगत निर्णय के रुप में और जनसंख्या नियन्त्रण को सरकारी या राज्य स्तर की जनसंख्या वृद्वि की विनिमय की नीति के रुप में देखा जाए।1

आधुनिक लोकतन्त्र में विकास को राज्य की बुनियादी जिम्मेदारी माना गया है । लेकिन जनसंख्या पर काबू पाये बिना हम विकास के मानक नहीं छू नहीं सकते। विश्व में भूमि व प्रकति का अनुपात प्रति व्यक्ति संतुलित न होने सें पृथ्वी पर असमानता बढने के कारण गम्भीर व मानवीय प्राकृतिक समस्यायें उभर रही है,सभी मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करनें हेतु व्यवसायीकरण बढ़ रहा हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या संसाधनों को खा रही है। औद्योगीकरण के कारण प्रदूषण बढ़ रहा हैं। मिलावटसे स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें बढ़ रही हैं। प्रदूषण ,पशु.पक्षियों का संकट,गिरता जल स्तर,घटतें वन, जीव जन्तु ,दम तोड़ती धरती ,अराजकता, अपराध आदि अनेक समस्याओ ने इसको और विस्फोटक बना दिया है । किसी भी देश मे जब जनसंख्या विस्फोटक स्थितियों में पहुॅच जाती हैं। तों संसाधनों के साथ उसकी गैर आनुपातिक वृद्धि होने लगती हैं। इसलिए इसमें स्थिरता लाना जरुरी होता हैं। संसाधन एक महत्वपूर्ण घटक हैं। भारत में विकास की गति की अपेक्षा जनसंख्या वृद्धि दर अधिक हैं। संसाधनों के साथ क्षेत्रीय असंतुलन भी तेजी सें बढ़ रहा हैं । दक्षिण भारत की जगह उत्तर भारत की प्रजजन दर क्षमता जैसे बिहार, उत्तर. प्रदेश, ओडिशा में ज्यादा हैं,जो भारत के अन्दर क्षेत्रिय असंन्तुलन पैदा करता हैं।

किसी भी देश में युवा तथा कार्यशील जनसंख्या की अधिकता तथा उससे होने वाले आर्थिक लाभ को जनसाख्यिकीय लाभांश के रूप में देखा जाता है। भारत में मौजूद समय में विश्व में सवार्धिक जनसख्या युवाओं की हैं। यदि इस आबादी का उपयोग भारत की अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के लिए किया जाये तो यह भारत को जनसांख्यिकीय लाभांश प्रदान करेगा किन्तु शिक्षा गुणवत्तापरक न हो,रोजगारपरक न हो स्वास्थ्य एंव आर्थिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध न हो तो बडी कार्यशील आबादी अभिशाप का रूप ले लेगी । क्योकि जनसंख्या विस्फोट से अनेक गम्भीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता हैं। जैसे–स्थिर जनसंख्या,जीवन की गुणवता, जन सांख्यिकीय विभाजन, सतत शहरी विकास एंव असमान आय वितरण आदि।

संयुक्त राष्ट् जनसंख्या कोष के सेक्सुअल एंडरिप्रोडक्टिव हेल्थ ऐंजसी ने 10 अप्रैल की स्टेट आफ वर्ल्ड पापुलेशन 2019 रिर्पोट जारी की हैं। जिसके अनुसार भारत की जनसंख्या 2010 से 2019 के बीच 1.2 की वार्षिक औसत दर से बढकर 1.36 अरब हो गई है । भारत की जनसंख्या 1994 में 94.22 करोड़ और 1969 में 54.15 करोड़ रहा। अनुमान है कि 2050 तक वैश्विक जनसंख्या में सबसे अधिक वृद्धि अफ्रीकी देशों और अधिक जनसंख्या वाले देशों जेसै भारत और नाइजीरिया में होगी।विश्व के अनेक देशों में जिसमें अनेंक मुस्लिम देश भी है। जहां जनसंख्या नियन्त्रण सम्बन्धी कानूनों का सख्ती सें पालन हो रहा हैं। 2

योजनायें एंव नीतियॉ–

प्रारम्भ में 1952 में बनायी गयी जनसंख्या नीति तदर्थ, लचीली और प्रयास एंव भूल पद्वति पर आधारित थी।1953 में एक परिवार नियोजन शोध और परियोजना समिति का गठन किया गया। 1956 में केन्द्रीय परिवार नियोजन बोर्ड स्थपित किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में जनसंख्या वृद्वि पर गम्भीर चिन्तन प्रारम्भ हुआ।चौथी पंचवर्षीय योजना 1969–74 का प्रमुख उद्वेश्य वार्षिक जन्मदर को 1972 के अन्त तक घटाकर 32 करना था। उसमें परिवार नियोजन को उॅची प्राथमिकता दी गयी।

भारत में1976 में पहली बार संसद के दोनों सदनों में विस्तृत चर्चा के बाद 42 संविधान संशोधन विधेयक पास हुआ था। संविधान की सातवीं अनुसूची में जनसंख्या नियन्त्रण और परिवार नियोजन का प्रावधान किया गया। लेकिन आजतक कोइ कानून नहीं बन सका।3 2000 में अटल बिहारी बाजपेयी द्वारा बनाये गये 11 सदस्यीय संविधान समीक्षा आयोग वैकटचलैया आयोग ने 2 वर्ष के बाद संविधान में अनुच्छेद 47 अ जोडने और जनसंख्या नियन्त्रण पर कानून बनाने का सुझाव दिया। पिछलें कई वर्षो से कई राजनेताओं नें मुखर होकर जनसंख्या नियन्त्रण की बहस को आगे बढाने का कार्य किया है।

बीजेपी के राज्य सभा के सदस्य राकेश सिन्हा ने जुलाई 2019 में जनसंख्या विधेयक नीजी विधेयक के रूप में पेश किया। जिसमें दो से अधिक बच्चे होने पर लोगो को अनेक सुविधाओ से वंचित करने का प्रावधान रहा। काग्रेंस नेता जितिन प्रसाद ,अश्विनी कुमार उपाध्याय द्वारा जनहित याचिका। 2018 में लगभग 125 संसदो ने राष्ट्रपति सें आग्रह किया दो बच्चों की नीति को लागू किया जाये। भारत के अनेक राज्यों ने जनसंख्या नियन्त्रण सम्बधी कानूनों को लागू किया हैं। 4

76 स्वतन्त्रता दिवस अवसर पर प्रधानमंत्री मोदीजी ने जनसंख्या नियन्त्रण को देश भक्ति बताया। उन्होनें कहा–समाज का वह लघु वर्ग जो अपने परिवारो को छोटा रखता हैं, सम्मान का हकदार हैं।यह देशभक्ति का कार्य हैं।

निष्कर्ष–

इस प्रकार जब भारत की आबादी 2030 तक चीन से भी ज्यादा हो जायेगी , आवश्यक है कि जनसंख्या नियन्त्रण कानून को बनाया जाये और सख्ती से उसका पालन कराया जाय। लेकिन चीन ने बढ़ती जनसंख्या को रोकने के लिए 1970 के दशक मे एक संन्तान कानून बनाया परिणामस्वरुप वहा बुजुर्गो की संख्या 2013 तक 9 प्रतिशत तक बढ़ गयी जिसने एक नयी समस्या को जन्म दिया। 5 लेकिन जनसंख्या पर काबू पाये बिना, हम विकास के किसी मानक को छू नहीं सकते। इसलिए कानून के साथ समाज को विभिन्न संचार माध्यमों से जागरुक करने, आर्थिक असमानता दूर करने, शिक्षित स्वैछिक संगठन का सक्रिय सहयोग, बाल विवाह अन्धविश्वासो को रोकने व जनसंख्या नियन्त्रण के लिए प्रेरित करना आवश्यक हैं।

सन्दर्भ सूची––

1 **hi/wikipedia.org/wiki** जनसंख्या नियन्त्रण

2 दृष्टि पत्रिका 22 अगस्त 2019

3 अवस्थी प्रो. आन्नद प्रकाश, भारतीय शासन एंव राजनीति, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा पब्लिकेशन 2013 पेंज न 707–709

4 **dhyeyaias.com/videos/nation/muddo/population-policy of India**

5 **hi/Wikipedia.org/wiki** एक बच्चा नीति

Dr. Sachchidananda Sinha and Bihar Movement

Abdul Azim Akhter

Abstract

Bihar became a separate state owing to the movement launched by a group of Biharis. Dr. Sachidananda Sinha was an influential member of the group, who played the role of sheet anchor. While studying in far away England, his feelings for a separate Bihar state was strengthened. Was he influenced by the Nation-state movement in Europe, or it was a nostalgia. An attempt is being made in this paper to survey and examine the role of Dr. Sinha in Bihar Movement.

Keywords: *Bihar, Behar, Bihari, Sinha, State, journalism, Kayastha*

Modern Bihar owes its existence to the brilliance of Dr. Sachidananda Sinha, who felt the need for the separation deep inside his heart, while studying in England in 1890s. He recalls the painful experience of anonymity: 'This was forced on my attention during my stay in London, as a student, during the early nineties of the last century(19th century) .'[1] He was born in November 10, 1871 at village Murar in the district of Shahabad now Bhojpur.[2] From his parents Sachchidananda inherited a spirit of rationalism which gave him the strength to rebel against unjust social restrictions and meaningless religious rituals and superstitions.[3] As per the tradition, Sachchidananda got early education from his mother at home. Later on, he was educated at the Arrah Zilla School, T. K. Ghosh Academy (Patna), Patna College and City College, Calcutta. He was introduced to the world of books right at home, as his father had large collection of books .This aspect of the daily routine inculcated in the son a love of books and a devotion to duty and it also created in him a love for journalism which, as a hobby and useful pastime, he cultivated throughout his life.[4]

While he was a first-year Arts student of the Patna College, in 1888, he was deeply impressed by Madan Mohan Malaviya. His dream to meet his idol was realised in 1889, when Malaviya visited Arrah for Congress organisational work and stayed with him at Patna.[5] It was around this time that Sachchidananda developed a keen desire to become barrister and visit England for study. His parents did not approve of the idea, and he was asked to pack up and return home. Somehow, he persuaded his parents and went to Calcutta to continue his studies. Once in Calcutta he again started preparations for a voyage to England and on 25 December 1889 secretly boarded a ship bound for London. But he was short of funds and on reaching Aden he wired his parents about his difficulties when they had no option but to be reconciled to the plan of their son.[6]

Perhaps, Sachchidananda was the first prominent Bihari Hindu to have undertaken a sea-voyage. Crossing the sea meant ex-communication of a Hindu from his caste and consequent social disability. No less a person than the late Dr. Sachchidananda Sinha, doyen among Indian journalists, had to face this situation at the hands of his Kayastha

community on his return from England, after his call to Bar in 1893; but being a man of firm conviction and resources, he successfully defied them.[7]

In London Sachchidananda used to live with the Imam brothers, Ali and Hasan. While in England he assisted the Congress Delegation of 1890 led by George yule and worked as a volunteer for the election of Dadabhai Naoroji from the Central Finsbury consistency in 1892.[8] Sachchidananda was called to the Bar from the Middle Temple on 26 January 1893 and returned to India in March. On his return he was asked by his relations to perform *prayaschitta* which he firmly refused to do. On this he was given a hero's welcome at Allahabad where the main speaker was Madan Mohan Malaviya.[9]

During his stay in England, he also discovered that there was no identity for 'Bihar'. He with the support of Mahesh Narayan, Nand Kishore Lal, and Rai Bahadur Krishna Sahay founded *The Bihar Times* on January 26,1894 with Mahesh Narayan as its editor. The movement 'Bihar for Biharees' intensified despite opposition from vested interests.[10] Dr. Sinha made a mark as a reputed journalist, who was respected for his wisdom, clarity, and opinon. *Behar Times* with its sub-nationalist idea was just the beginning of his career. Among the pioneers of journalism in Bihar, when it was a mission and not so much of a profession, Dr. Sinha…was indeed the most colourful and inspiring.[11]

The *Behar Times* under Mahesh Narayan played leading role in the creation of a separate Province of Bihar. When Lieutenant Governor Sir Alexander Mackenzie turned down the idea of Bihar as a separate administrative unit, it had its effect on Dr. Sinha and others. He recalls: 'For nearly seven years, we had to lie low and bide our time, content with quietly educating public opinion.[12]

Sachchidanand Sinhawas suffering from malarial fever, and left Bihar to recuperate. His stay in Allahabad proved to be fruitful and he came in intimate contact with Ramananda Chatterjee, Motilal Nehru and Tej Bahadur Sapru. He was the Secretary of the Kayastha Pathsala for some years and when Ramananda Chatterjee left permanently for Calcutta he became the Editor of the *Kayastha Samachar*. He also edited Kayastha Samachar, an educational journal published from Allahabad.[13] He founded the *Hindustan Review* in 1901, which he edited till his death in 1950. *Hindustan Review* was renowned journals of intellectuals and its views were taken notice by people. The editor of the *Hindustan Review*…described the use of foreign capital as 'a system of international depradation'.[14]

He started the *Indian People* in Allahabad as early as 1903 and called C.Y. Chintamani to assist him in bringing out this weekly.[15] Sachchidanand Sinha, summed up the Indian critique in a pithy manner in *Indian people* on 27 February 1903: 'Their work of administration in Lord Curzon's testimony is only the handmaid to the task of exploitation. Trade cannot thrive without efficient administration, while the latter is not worth attending to in the absence of profits of the former. So always with the assent and often to the dictates of the Chamber of Commerce, the Government of India is carried on,

and this is the "white Man's Burden.[16] The Indian People was later incorporated with the *Leader* which started publication as a daily in 1909.[17] Dr. Sinha was the founder director of the *Leader* and he installed Chintamani as its editor. Thus, he along with Madan Mohan Malaviya and Motilal Nehru organised The *Leader* which played important role in the freedom movement in U.P. in shaping public opinion.

The movement for separate Bihar gained momentum by 1896 and more particularly after the partition of Bengal in 1905. In 1906 he reconstituted the management of the *Behar Times* and changed its name to the *Beharee* to serve the Bihari interests. He along with Hasan Imam, Rajendra Prasad, P. R. Das and others started *The Searchlight*on 15 August 1918 at Patna. He was also associated with the *Indian Nation* (Patna).

He declined Knighthood, when his name was proposed in 1944, by the then Governor of Bihar, Sir Thomas Rutherford. He considered democratic ideals and acceptance of official titles incompatible.[18] He stood for Hindu-Muslim unity. It was Dr. Sinha who canvassed for the selection of Ali Imam as Law Member of the Viceroy's Executive Council and convinced him to accept the offer. Kayasthas and Muslims felt the need for rejuvenating the spirit of Bihar and both worked together to realise the dream of separate Bihar.[19]

He was also a rebel and a reformer in his own right, who set benchmarks for the Biharis through his words and deeds. He was the first Hindu in public life from Bihar to have married outside his sub-caste in 1894.[20]

He was the recognised spokesman of the Bihari people and was chosen Secretary of the Reception Committee of the Congress session at Bankipore in 1912. Sachchidananda presided over the 35th session of the All India Kayastha Conference at Delhi in 1929. In 1930, he was elected unopposed from his home constituency of Shahabad to the Bihar and Orissa Legislative Council and became the leader of the opposition until 1937.

He also took part in the meetings which aimed to remove acrimony between the peasant and the landlord.[21] In 1946 he was elected by the Bihar Legislative Council to the Constituent Assembly of India and he presided over its inaugural session. He was the pro-tem speaker of the Constituent Assembly. He passed away on 6 March 1950, and thus was active till the very end. All through his life, he worked with rational and nationalist approach. He was admired for his liberal constitutional approach to problems, and his charity, hospitality and personality made him adorable among the people. In the foreword of his book 'Some Eminent Bihar Contemporaries', Amaranatha Jha writes: '...even before the separation of the province of Bihar from Bengal, Mr. Sinha had been elected in 1910, to the Imperial Legislative Council, and had an established reputation as a journalist and lawyer. Dr. Sinha wields a facile pen;he has a marvellous memory; he is voracious and methodical reader; he is meticulously accurate;above all he has a genius for friendship.[22]

REFERENCES

1- Sachchidanand Sinha, Some Eminent Bihar Contemporaries, Himalaya Publications, Patna, 1944, p. ii

2-N.M.P. Srivastava , A History of Searchlight, K.P.Jayaswal Research Institute, Patna, 1998, p.5
3-V. A. Narain, http://www.vandemataram.com/biographies/patriots/sinhas.htm
4-Ibid.,
5-Ibid.,
6-Ibid.,
7-N. Kumar, Journalism in Bihar, A supplement to Bihar State Gazette, Govt of Bihar, Patna., p. iv
8-V. A. Narain, op. cit.,
9-ibid
10-N.M.P. Srivastava, op. cit., p.8
11- J. N. Sinha , To them journalism was a mission, quoted in N.Kumar op. cit., p.139.
12-Sachchidanand Sinha, op. cit., p. xvii
13-J.N. Sinha, ___, quoted in N. Kumar op. cit., p. 140
14-Bipan Chandra &others, India's Struggle for Independence, Penguin Books, New Delhi, p.94
15-N. Kumar, op. cit., p.139
16-quoted in Bipan Chandra and others, India's Struggle for Independence, Penguin Books, New Delhi, p.99
17-N. Kumar, op. cit., p.139
18-V. A. Narain, op. cit.,
19-Ali Ashraf, The Muslim Elite of Bihar, Khuda Bakhsh Oriental Public Library, Patna, 1996, p.26
20-V. A. Narain, op. cit.,
21-Arvind N. Das, Agrarian Movements in India: Studies on 20th century Bihar, Routledge, 1982 p.67(online access)
22- Sachchidanand Sinha, op. cit., Foreword

मानवीय जीवन में बाल–साहित्य की भूमिका

विकाश कुमार
हिन्दी विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा

बाल–साहित्य शब्द दो शब्दों के मेल से बना है– बाल और साहित्य। बाल का अर्थ है–बालक। साहित्य का अर्थ होता है– जिसमें सभी का हित सम्मिलित हो। ''बाल साहित्य से मेरा अभिप्राय उन प्रकाशनों से है। जिनका उद्देश्य बच्चों को सहज रीति से आनन्द देना है न कि उन्हें मुख्य रूप से शिक्षा देना, अथवा उन्हें सुधारना अथवा उन्हें उपयोगी रीति से शान्त बनाए रखना। अतः मैं इस इतिहास में सामान्य नियम के रूप में उन सभी पुस्तकें को शामिल नहीं करूंगी जो स्कूलों में पढ़ाई जाती है, जो विशुद्धतः नैतिक शिक्षा अथवा ज्ञानवर्द्धन के प्रयोजन से लिखी गई हैं, जिनमें बच्चे के जीवन का व्यस्क दृष्टि से चिंतन–प्रधान वर्णन होता है अथवा जो वर्णमाला, प्राइमरी और वर्तनी–शिक्षा की पुस्तकों की कोटि में आती है।'' महादेवी वर्मा ने भी बाल–साहित्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए है। उन्होंने कहा है– ''मैं समझती हूँ कि उत्कृष्ट साहित्य की जो परिभाषा है, बाल–साहित्य की परिभाषा उससे भिन्न नहीं होती, क्योंकि मनुष्य की पूरी पीढ़ी बनाने का कार्य वह करती है।''

अतः यह कहा जा सकता है कि बाल–साहित्य बच्चों की मनोवृत्तियों को ध्यान में रखकर लिया गया साहित्य होता है, जो 'स्वांतः सुखाय' होता है। '' मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूँ कि उत्तम कोटिके साहित्य में भी जो सर्वोत्तम है उसी को बच्चों के लिए अच्छा साहित्य माना जा सकता है।''

मानवीय जीवन में बाल साहित्य की भूमिका अप्रतिम है यह साहित्य हमें मानवता की ऐसी भूमि पर लाकर खड़ा कर देता है, जहाँ पर जाति–भेद, रंग–भेद, धर्म–भेद सब मिट जाते है। ''किसी देश के बाल –साहित्य की एक अच्छी रचना विश्वभर की भाषाओं में अनूदित होकर विश्वबंधुत्व की भावना के प्रचार का जितना अधिक काम कर सकती है, उतना कई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी मिलकर नहीं कर पाते। जापान, अफ्रीका अथवा उनके सुन्दर स्थलों के विषय में जो अनुराग पैदा कर सकती है वह अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव के लिए बहुत बड़ी देन होगी।''

मानवीय जीवन में मानवीय–मूल्यों को सुरक्षित रखने के लिए, साथ ही समाज और राष्ट्र की उन्नति के लिए अच्छे बाल–साहित्य का सृजन अत्यन्त आवश्यक है उच्चकोटि के बाल–साहित्य सृजन द्वारा हम बच्चों में ईमानदारी, दया, न्याय, सहनशीलता, नैतिक सदाचार, राष्ट्र के प्रति–प्रेम और विश्व–बंधुत्व की भावना पैदा कर सकते है। '' बाल–साहित्य मानव संस्कृति का प्राण है। मानव जाति के चिरंतन मूल्य, उसके महान आदर्श बाल–साहित्य में ही सुरक्षित रहते हैं। मनुष्य न केवल धन के रूप में अपितु समस्त रूपों में अपने जीवन भर की कमाई बच्चों को सौंप जाना चाहता है। अतः कोई भी जाति जो बच्चों को अच्छा साहित्य नहीं दे पाती, सुसंस्कृत होने का दावा नहीं कर सकती हैं।'' मानवीय जीवन में बाल–साहित्य के अनेक पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं; जैसे, शैक्षिक पक्ष, सांस्कृतिक पक्ष, सामाजिक पक्ष, वैयक्तिक पक्ष, राष्ट्रीय पक्ष, अन्तर्राष्ट्रीय पक्ष आदि। बाल–साहित्य और शिक्षा का आपस में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा से

ही बाल–साहित्य की शुरूआत मानी जा सकती है। जैसे, हमारी दादी–नानी का बचपन में सीख देने के लिए मनगढ़ंत कहानी सुनाना। पंचतन्त्र की रचनाएँ भी शिक्षा सम्बन्धी बाल रचनाएँ ही हैं। बाल–साहित्य के द्वारा सर्वप्रथम शिक्षा देने का प्रयास सर्वप्रथम कथा के माध्यम से शिक्षा देकर मूर्ख राजकुमारों को राजनीति का पंडित बना दिया। शिक्षा के क्षेत्र में इस क्रांति का सूत्रपात लगभग दो हजार वर्ष पहले भारत वर्ष में हुआ।' बाल–साहित्य का सांस्कृतिक महत्व भी है। सांस्कृतिक का अर्थ होता है, रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा आदि। '' किसी देश की उत्तम साहित्यिक रचनाओं का मूल उस देश की संस्कृति में होता है। और संस्कृति का मूल पुराण तथा लोक–साहित्य है। अब यह लोक साहित्य और पुराण अपने मूलरूप में, यदि पूर्णरूप से नही तो अधिकांश रू‍प से तो अवश्य ही बाल–साहित्य है क्योंकि इनकी उत्पत्ति बालकों की आवश्यकताओं के कारण हुई है।'' बाल–साहित में ऐसी बहुत सी सांस्कृतिक रचनाएं भी लिखी गई है जो हमारी संस्कृति की पहचान करवाती है। समाज की यथार्थ स्थिति को प्रस्तुत करने का बाल–साहित्य महत्वपूर्ण साधन माना जा सकता है। यह समाज के जीवन–दर्शन का सूचक होता है ''प्राचीन काल से लेकर आज तक हर युग और समाज में इस बात का प्रयत्न किया गया कि बच्चों को भविष्य की सही दिशा दी जाए। इसके लिए बड़े लोग अपने जीवन के अनुभव तथा कथाएँ सुनाते थे जिससे बच्चों का मनोरंजन होने के साथ–साथ उनका बौद्धिक विकास भी होता था और जिसके सहारे वे अपने भविष्य की दिशा निर्मित कर पाते थे। प्राचीन कथाओं में उस युग के सामजिक और नैतिक आदर्शों की व्याख्या मिलती है। पितृभक्त, गुरूभक्त और सच्चरित्र बालकों की कहानियाँ इसी उद्देश्य से निर्मित हुई थीं। उनमें तत्कालीन भारतीय समाज–व्यवस्था और नैतिक जीवन के लिए मुखर हुए हैं। इसके साथ ही सामंतवादी व्यवस्था के शिकार होने वाले पिछड़े वर्ग के बच्चों के चित्र भी हैं।'' बाल साहित्य समाज के जीवन दर्शन का सूचक होने के साथ–साथ उसके विकास की अवस्था का द्योतक भी होता है। पाल हजार्ड अपनी पुस्तक बुक्स चिल्ड्रेन्स एण्ड मैन में कहते है– जिन व्यस्कों ने शताब्दियों तक बच्चों को ठीक ढ़ग से कपड़े पहनाने की बात तक नहीं सोची वे उनके लिए उपयुक्त पुस्तकों की व्यवस्था करने की बात कैसे सोच सकते थे? बाल साहित्य का वैयक्तिक महत्व भी है। बाल–साहित्य बच्चों के व्यक्तिगत जीवन अपना अमूल्य सहयोग देता है। बच्चों की आवश्यकताओं ओर बाल साहित्य द्वारा उनकी पूर्ति का विस्तृत विवेचन हिल आर्बुथनार ने किया है। उन्होने बच्चों की निम्नलिखित आवश्यताएँ बताई हैं–

1. सुरक्षा की आवश्यकता
2. आत्मीय संबंध की आवश्यकता
3. प्यार करने और प्यार पाने की आवश्यकता
4. कुछ प्रशंसनीय कार्य करने की आवश्यकता
5. परिवर्तन की आवश्यकता
6. सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता

उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति बच्चे के जीचन के लिए अनिवार्य है। ... उपयुक्त पुस्तक पढ़ने से बच्चा विकास प्रक्रिया के कठिन कार्यों के लिए वस्तृतः शक्ति प्राप्त कर लेता है। बच्चों के विकास में ही राष्ट्र का विकास निहित होता है। अतः राष्ट्रीय महत्व में बाल साहित्य का महत्व अक्षुण्ण है। ''बाल–साहित्य के सामाजिक तथा राष्ट्रीय महत्व के संबंध में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। हम बालकों को जिस प्रकार का साहितय देंगे उसी के अनुसार कल के समाज का रूप निश्चित होगा। आज के बालक कल के नागरिक हैं। आने वाले समाज के विचार और व्यवहार का स्तर इस बात पर निर्भर है कि हम इस समय बालकों को घटिया दर्जे का साहित्य देते है या ऊंचे दर्जे का। सामाजिक बुराईयों और राष्ट्र की कमजोरियों का परिहार भाषणों तथा आन्दोलनों से नहीं होता। इस विषय में हमारी आशाएँ इन बच्चों पर लगी रहती है जो आगे चलकर समाज तथा राष्ट्र के कर्णधार बनेंगे।'' वैश्वीकरण के दौर में जब पूरा विश्व एक गाँव के रूप में बदलता जा रहा है। ऐसे में पूरे विश्व में क्या घटना घट रही है हमें चन्द मिनटों में पता चल जाता है, किन्तु आज हमारे अपने पड़ोस में क्या हो रहा है उससे हम अनभिज्ञ रहते हैं। बाल साहित्य बच्चों में उन अंकुरों को पुष्ट करता है, जो बड़े होकर उन्हें जीवन के सत्य को पहचानने में सहायता करते हैं। साथ ही यह साहित्य हमें मनौवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी समस्याओं के समाधान खोजने के सहायता करता है।

संदर्भः

1. ए हिस्ट्री ऑफ चिल्ड्रेन्स लिट्रेचर, हार्वे डार्टन, पृष्ठ–205
2. बाल–साहित्य की मान्यताएँ एवं आदर्श, महादेवी वर्मा पृष्ठ14
3. चिल्ड्रेन्स एंड बुक्स–बाल्टर डिलामारे, पृष्ठ–130
4. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, मस्तराम कपूर, पृष्ठ–47
5. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, मस्तराम कपूर, पृष्ठ 58
6. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, मस्तराम कपूर पृष्ठ–48
7. हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, मस्तराम कपूर पृष्ठ–40
8. बाल साहित्यः मेरा चिन्तन, डॉ हरिकृष्ण देवसरे, पृष्ठ–48
9. बक्स चिल्ड्रेन्स एण्ड मैन–पाल हजार्ड, पृष्ठ–6
10. चिल्ड्रेंस बुक्स–हिल आर्बुथनाट, पृष्ठ–14
11. हिन्दी बाल–साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, मस्तराम कपूर, पृष्ठ–43

औद्योगिक श्रमिकों की समस्याओं का एक समाजशास्त्रीय अध्ययनः मुरी पंचायत के हिण्डाल्को कारखाने के विशेष संदर्भ में

अमित कुमार
शोध छात्र
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची

सारांश

संपूर्ण विश्व में एकमात्र कामगार वर्ग श्रमिक ही है, जिसके कंधों पर समस्त विश्व के विकास कार्यों का उत्तरदायित्व रहता है। विकसित व अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत जैसे बहुसंख्यक आबादी वाले देशों में श्रमिकों का अपना एक अलग ही महत्व है। यद्यपि बढ़ती तकनीकी व मशीनीकरण के कारण अनेक कार्यों में श्रम के स्थान पर मशीनों का उपयोग निरंतर रूप से बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण श्रमिकों के रोजगार की समस्या में भी वृद्धि हो रही है। जहाँ अन्य देशों में आबादी कम होने से श्रमिक मिलना मुश्किल होता है, वहीं भारत में एक अनार सौ बीमार की तर्ज पर किसी एक निर्माण कार्य में सौ व्यक्तियों की जरूरत हो तो वहाँ पर हजार से अधिक व्यक्ति रोजगार की आस में कतार लगाए खड़े मिल जाते हैं। रोजगार प्राप्ति के लिए बड़ी संख्या में बेरोजगार रहने से प्रशासन के द्वारा समय–समय पर श्रमिकों के हित में बनाये जाने वाले नियम व कानूनों के बावजूद उन्हें न्यूनतम वेतन व अन्य सुविधाएं मिलना मुश्किल होता है। वर्तमान में सरकार के द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति को अपनाये जाने से श्रमिकों के रोजगार प्राप्त करने और अपने रोजगार को बचाने हेतु अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में श्रमिकों को रोजगार प्राप्त करने में अनिश्चितता की स्थिति बनी रहती है। साथ ही साथ कम मजदूरी व अधिक मेहनत करने के उपरांत उन्हें समय पर रोजगार उपलब्ध हो, यह निश्चित नहीं होता है। साथ ही ऐसी परिस्थिति में वे अपने अधिकारों की लड़ाई नहीं लड़ पाते हैं, जिससे उन्हें अपने कार्य क्षेत्र में नियमित रूप से शोषण का शिकार बनना पड़ता है।

इस शोध पत्र के माध्यम से मुरी पंचायत के हिण्डाल्को उद्योग के श्रमिकों की समस्याओं को बताने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द–निर्माण, हिण्डाल्को, स्वास्थ्य, ऋण, बीमारी, सामाजिक योजनाएं

आधुनिक युग में प्रत्येक क्षेत्र में जीवन अत्यधिक जटिल और संधर्षमय हो गया है। पूंजीपतियों की तुलना में श्रमिक का श्रेणी अपेक्षाकृत कमजोर होने के कारण पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों का हमेषा शोषण होता आया है। हिण्डाल्को में श्रमिकों में महिला श्रमिकों की शोषण की समस्या वर्तमान युग की समस्या नहीं, बल्कि नियोक्ताओं द्वारा इनके शोषण की समस्या अरसे से चली आ रही हैं। यदि मजदूरी की दर श्रमिकों की उत्पादकता से निची और लाभ ऊँचे होते हैं तो श्रमिकों का शोषण होता है। हिण्डाल्को में मजदूरों के शोषण का सबसे प्रमुख कारण श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग से अधिक होती है। साथ ही असंगठित श्रमिकों की सौदा शक्ति भी असमान और कमजोर होती हैं। वर्तमान समय में सेवायोजक कम मजदूरी देकर महिला श्रमिकों को अधिक समय कार्य करने के लिए बाध्य करते है। उद्योगों में महिला श्रमिकों से आठ घंटे कार्य कराया जाता हैं,

जबकि यहाँ महिला श्रमिकों से सेवायोजकों द्वारा नौ से दस घंटे कार्य लिया जाता है। जिससे उनकी शोषण प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। मजदूरी की समस्या श्रमिकों के जीवनस्तर से जुड़ी हुई है। इस कार्य में श्रमिकों की मजदूरी अपर्याप्त है। अपर्याप्त मजदूरी होने के बावजूद भी आवश्यकता होने पर ही भवन निर्माण श्रमिकों को काम पर लाया जाता है। अतः इसके कारण यह समुचित प्रकार से अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण नहीं कर पाते हैं। यहाँ के श्रमिकों की सबसे महत्वपूर्ण समस्या यह है कि उनमें पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा महिला श्रमिकों को समान कार्य करने के लिए भी कम मजदूरी दी जाती है। अपर्याप्त मजदूरी, अशिक्षा एवं अधिक सदस्य संख्या के कारण इनका जीवन स्तर निम्न होता हैं, जिसके कारण यह महत्वपूर्ण आवश्यकता को सही ढंग से पूरा नहीं कर पाते हैं, भोजन पर्याप्त व संतुलित नहीं मिलता, जिसके कारण कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य गिरने लगता हैं और इनकी कार्य क्षमता में कमी आ जाती है। हिंडाल्को में श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या अर्द्ध बेरोजगारी की है। प्रत्येक उद्योग धंधों में कार्य करते–करते श्रमिक एक निश्चित अवधि के बाद स्थाई हो जाता है। पहले उन्हें दैनिक मजदूरी पर रखा जाता है, फिर उन्हें धीरे–धीरे स्थाई कर दिया जाता है,[1] किन्तु यहाँ के कार्य में लगे श्रमिक चाहे कितने भी दिन एक सेवायोजक के पास कार्य करते रहे, फिर भी कभी स्थाई नहीं हो पाते हैं। ठेकेदार जब चाहे तब उन्हें काम से हटा देते है। निर्माण कार्य में सलंग्न मजदूरों में से अधिकतम मजदूरों की मजदूरी प्रतिदिन प्राप्त नहीं होती है और कुछ को साप्ताहिक तथा कुछ को मासिक प्राप्त होती हैं, क्योकि इन मजदूरों का कोई निश्चित ठेकेदार या नियोक्ता नहीं होता है तथा कार्य स्थल भी परिवर्तित होता रहता हैं, हिण्डाल्को के मजदूरों में अपनी मांगों को लेकर आवाज उठाने की क्षमता भी कम होती हैं, क्योकि यह असंगठित हैं, निरक्षर है, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं हैं। हिण्डाल्को में कार्यरत श्रमिकों को पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ न मिलने से और कार्य में प्रयोग आनेवाले सीमेंट, व अन्य हानिकारक पदार्थ के हमेशा संपर्क में रहने के कारण इन्हें विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य सबंधी समस्याएं आती हैं। शारीरिक रूप से स्वस्थ न होने से इनकी आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। इन मजदूरों को ठंड, गर्मी तथा बरसात सभी मौसमों में काम करना पड़ता हैं, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। स्वास्थ्य का प्रभाव उनकी कार्य क्षमता पर पड़ता हैं, जिससे उनका जीवन स्तर निम्न बना रहता हैं।

राँची जिला

राँची जिला झारखंड की राजधानी है। राँची जिला मे दो अनुमण्डल राँची सदर और बुण्डू है। राँची जिला में 18 ब्लॉक और 305 पंचायत शामिल हैं। राँची उपखंड के तहत 14 ब्लॉक हैं और बुण्डू अनुमण्डल में 4 ब्लॉक हैं। राँची भारतीय क्रिकेट खिलाड़ी एम. एस. धोनी का गृह नगर है। शहर में एक मध्यम जलवायु होती है और अविभाजित बिहार के समय से गर्मियों की राजधानी है। इसे "जलप्रपातों का शहर" के रूप में भी जाना जाता है।[2]

राँची, बिहार, झारखंड और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्सों के छात्रों के लिए भी एक लोकप्रिय शैक्षणिक केन्द्र है। कई छात्र यहां उच्च शिक्षा के लिए आते हैं, और इसमें कुछ प्रतिष्ठित संस्थान भी हैं जैसे कि बी.आई.टी. मेसरा, आई.आई.एम, एन.आई.एफ.एफ.टी, एन.यू.एस.आर.एल, सी. आई.पी, आर.आई.एम.एस.आदि। इसमें एच.ई.सी, सी.सी.एल. और सेल जैसी कुछ महत्वपूर्ण सरकारी संगठनों के प्रमुख कार्यालय भी हैं। यह खेल के बुनियादी ढांचे के लिए भी जाना जाता है, क्योंकि यहां विभिन्न प्रकार के खेल के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर के स्टेडियम हैं।[3]

सिल्ली प्रखंड

सिल्ली भारतीय राज्य झारखंड के राँची जिले का एक सामुदायिक विकास खंड है। 2011 की जनगणना में सिल्ली ब्लॉक की कुल जनसंख्या 113,798 थी, और इसमें 94 गाँव और मुरी शहर शामिल हैं। सिल्ली छोटानागपुर पठार के दक्षिणी भाग में स्थित है, और राँची शहर से लगभग 60 किलो मीटर दूर है, जो दक्कन पठार का पूर्वी भाग है। इसमें पहाड़ी स्थलाकृति है और इसके घने उष्ण कटिबंधीय वन में एक संयोजन है जो राज्य के बाकी हिस्सों की तुलना में अपेक्षाकृत मध्यम जलवायु मिलती है।[4]

हालांकि सिल्ली में आर्द्रउपोष्ण कटिबंधीय जलवायु है, इसका स्थान और इसके आस–पास के जंगल सिल्ली की जलवायु को काफी खुषनुमा बनाते है। गर्मियों में यहाँ का तापमान 20 डिग्री सेल्सियस से 42 डिग्री और सर्दियों में तापमान 8 डिग्री सेल्सियस से 25 डिग्री तक रहता है। दिसंबर और जनवरी सबसे अच्छे महीने हैं, कुछ क्षेत्रों में तापमान हिमांक बिंदु तक जाता है।

मुरी पंचायत

मुरी झारखंड राज्य के राँची जिले के सिल्ली प्रखण्ड में एक छोटा गाँव बस्ती है। यह मुरी पंचायत के अंतर्गत आता है। यह जिला मुख्यालय राँची से पूर्व की ओर 65 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इसके निकट में बांसारूली (2 किमी), सिल्ली (4 किमी), पिस्का (5 किमी), लुपुंग (5 किमी), टुटकी (5 किमी) गाँव हैं। मुरी के पूरब में झालदा प्रखण्ड, उत्तर में गोला और दक्षिण में सोनाहातु प्रखण्ड से घिरा हुआ है। तेनु डैम कथारा, पुरुलिया, बोकारो स्टील सिटी, फुसरो शहर इत्यादि मुरी के नजदीक हैं। यह स्थान राँची जिला और पुरुलिया जिले की सीमा में स्वर्णरेखा नदी के तट पर बसा है। पुरुलिया जिला झालदा प्रखण्ड मुरी से पूर्व की ओर है। यह पश्चिम बंगाल राज्य सीमा के पास है।[5]

2011 की भारत की जनगणना के अनुसार, मुरी की जनसंख्या 11,999 थी। पुरुषों की आबादी 53 प्रतिशत और महिलाओं की 47 प्रतिशत है। मुरी की औसत साक्षरता दर 73 प्रतिशत है, जो राष्ट्रीय औसत 59.5 प्रतिशत से अधिक हैः पुरुष साक्षरता 82 प्रतिशत है, और महिला साक्षरता 62 प्रतिशत है। मुरी में, 12 प्रतिशत आबादी 6 साल से कम उम्र की है।

हिण्डाल्को कारखाना

हिण्डाल्को की कहानी 1950 के दशक की है। एक विशाल छलांग लगाने के लिए तैयार, भारत को बड़ा बनाने के लिए तैयार किया गया था, खासकर नवाचार और औद्योगिकीकरण के मामले में। हिण्डाल्को ने 1958 में अपनी यात्रा शुरू की। औद्योगिक भारत की दृष्टि में इसका पहला वास्तविक योगदान चार साल बाद हुआ, जब दिवंगत दूरदर्शी जी. डी. बिड़ला ने भारत के उत्तरप्रदेश के पूर्वी तट पर रेणुकूट में भारत की पहली एकीकृत एल्युमीनियम फैक्टरी स्थापित की।[6] यह 1967 में रेणुसागर में एक कैप्टिव थर्मल पावर प्लांट द्वारा समर्थित था। हिण्डाल्को ने उद्योग में दिवंगत आदित्य विक्रम बिड़ला के गतिशील नेतृत्व में अपना कार्य किया, और यह श्री कुमार मंगलम बिड़ला, समूह के अध्यक्ष के विजन और मार्गदर्शन के माध्यम से था कि एल्युमीनियम और तांबे के व्यापारिक क्षेत्रों को हिण्डाल्को को मिश्रित धातुओं के बिजली घर बनाने के लिए समेकित किया गया था जो आज है। यह इण्डाल और बिड़ला कॉपर जैसी कंपनियों के साथ विलय और अधिग्रहण के माध्यम से विस्तार से प्राप्त किया गया था। हिण्डाल्को ने तांबे के भंडार को भी सुरक्षित किया और ऑस्ट्रेलियाई तांबा खानों का अधिग्रहण करके अपने परिचालन आधार को बढ़ाया।

इन वर्षों में, हिंडाल्को देश में एक प्रमुख खड़ी एकीकृत एल्यूमीनियम कंपनी और एशिया में एल्युमीनियम के सबसे बड़े प्राथमिक उत्पादकों में से एक बन गया है। इसकी तांबे की स्मेल्टर आज एक ही स्थान पर दुनिया की सबसे बड़ी कस्टम स्मेल्टर में से एक है। 2007 में दुनिया की सबसे बड़ी एल्युमीनियम रोलिंग कंपनी, नोवेलिस इंक का ऐतिहासिक अधिग्रहण, जिसने दुनियाभर में हिण्डाल्को के पदचिह्न को रखा, इसे शीर्ष पांच वैश्विक एल्युमीनियम बड़ी कंपनियों में एक रैंक हासिल हुआ।[7]

हिंडाल्कों कारखाने के श्रमिकों की प्रमुख समस्यायें

झारखंड के प्राकृतिक रूप से सम्पन्न राँची जिले में बॉक्साइट के विशाल सिंचित भंडार उपलब्ध है। इसकी स्थापना के साथ ही राज्य को इस क्षेत्र के खनिज भंडार से करोड़ों रूपये राजस्व के रूप में प्रतिवर्ष प्राप्त हो रहा है। जिससे आज हजारों लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है। जिले में कृषि भूमि के अभाव के कारण अधिकांश श्रमिकों के द्वारा इसकी खदान व फैक्ट्री में कार्य किया जा रहा है। जिससे प्राकृतिक संसाधनों का समुचित प्रयोग हुआ है, इन उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों के जीवन स्तर में कोई परिवर्तन नहीं आया है। शासन द्वारा चलाई जा रही सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का भी श्रमिकों को पूर्ण लाभ नही मिल पा रहा है।[8] परिणामतः उद्योग व खदानों में कार्य करने पर भी श्रमिकों के आर्थिक व सामाजिक जीवन स्तर में कोई विशेष विकास नही हो पा रहा है।

उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की आर्थिक व सामाजिक समस्याएँ :

अशिक्षा :–अधिकांश श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या अशिक्षा है। जिसके कारण वह अपने अधिकारों का लाभ नही उठा पा रहे है, अशिक्षा के कारण श्रमिक लाभकारी योजना का महत्व नही समझ पाते है, अशिक्षा तथा जानकारी के अभाव में इन श्रमिकों द्वारा कई लाभकारी योजना का लाभ प्राप्त नही कर पा रहे है जो कि श्रमिकों के आर्थिक सामाजिक जीवन स्तर को उँचा उठाने में एक रुकावट है। इस प्रकार सभी समस्याओं का एक मूलभूत कारण अशिक्षा ही है।

प्रशिक्षण का अभाव :–उद्योगों में बड़ी–बड़ी मशीनों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु श्रमिकों को मशीनों के प्रयोग से संबंधित किसी प्रकार का कोई प्रशिक्षण नही दिया जाता जिससे श्रमिकों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का बेहतर प्रयोग नही कर पाते है तथा श्रमिकों के प्रशिक्षण की अभाव में आकस्मिक दुर्घटना होने की संभावना बनी रहती है। अतः प्रशिक्षण के अभाव में श्रमिकों की कुशलता में कमी आयी है, जो एक प्रमुख समस्या है।

न्यूनतम मजदूरी एवं बोनस का अभाव :–उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की मजदूरी दर न्यूनतम है। कार्यरत श्रमिकों की मजदूरी उनकी योग्यता के अनुसार भुगतान नही की जाती है तथा उन्हें न्यूनतम मजदूरी पर ही संतुष्ट होना पड़ता है, जिसके कारण वे अपनी आवश्यकता की पूर्ण रूप से पूर्ति नही कर पा रहे है जिससे वे अपनी आर्थिक स्थिति में उचित विकास नही कर पा रहे है।

कार्य की समय सीमा संबंधी समस्या :–उद्योग में कार्यरत श्रमिकों की एक समस्या कार्य की समय सीमा अधिक होना है। इन श्रमिकों से अधिक घण्टों तक कार्य लिया जाता है, यहाँ दिन व रात पाली में श्रमिकों से 8 से 10 तथा 10 से 12 घंण्टे कार्य लिया जाता है, जिसके कारण उन्हें आराम के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। जिसका प्रभाव श्रमिकों के स्वास्थ्य पर पड़ता है।[9]

अवकाश संबंधी समस्या :– इन उद्योग व खदानों में कार्यरत श्रमिकों को आवश्यकता होने पर तत्काल अवकाश नही दिया जाता है, और जिस दिन श्रमिक द्वारा छुट्टी ली जाती है अथवा जिस

दिन काम नही किया जाता, उस दिन की मजदूरी श्रमिकों को नही दी जाती है, जिसके कारण अवकाश संबंधी समस्या का सामना भी श्रमिकों को करना पड़ता है।

आवास सुविधा :– मानव की मूलभूत आवश्यकता होने के कारण आवास व्यवस्था का सीधा प्रभाव श्रमिकों की कार्यकुशलता पर पड़ता है। श्रमिक मानसिक व शारीरिक कार्य करने वाला व्यक्ति है तथा उसकी कार्य क्षमता को आवास व्यवस्था भी प्रभावित करती है, उद्योगों के मालिक द्वारा किसी प्रकार की आवास सुविधा नही दी जा रही है, इन श्रमिकों को आवास के साथ–साथ बिजली, पानी जैसी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्या :–स्वास्थ्य का श्रमिकों की कार्यकुशलता पर गहरा प्रभाव पड़ता है, उद्योग में कार्यरत कई श्रमिक अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रसित है जिससे दमा, टी.बी. कैंसर, नेत्र रोग जैसी कई प्रकार की बीमारी षामिल हैं। इन बीमारियों से बचने के लिए श्रमिकों के लिए कोई सुविधा उपलब्ध नही है,[10] बीमारी से ग्रसित कई श्रमिक ऋण में डूब जाते है तथा शासन द्वारा भी इन उद्योगो में कार्यरत श्रमिकों के लिए कोई उचित प्रावधान नहीं किया जाता है।

आय–व्यय :–मनुष्य आर्थिक प्रयत्नों द्वारा जो आय प्राप्त करता है, उसका प्रधान लक्ष्य दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यय करना होता है। यहाँ पर कार्यरत श्रमिकों की आय बहुत कम है, जिसके कारण उन्हें अपनी सीमित आय में अनिवार्य आवश्यकताओं की वस्तु क्रय करने में भी कठिनाई का अनुभव होता हैं। अतः उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी व संतोषप्रद नहीं होने के कारण यहाँ श्रमिक अपने जीवन स्तर को ऊँचा नही उठा पा रहे है तथा ये अधिकांश श्रमिक अपनी आर्थिक संतुष्टि के स्तर को खराब मानते है, तथा कुछ तटस्थ है, वे अपनी आर्थिक स्थिति को लेकर मौन धारण किये है।

ऋण :–यहाँ उद्योग व खदानो में कार्यरत अधिकांश श्रमिकों को विवाह, बीमारी तथा कई सामाजिक रीति रिवाजों आदि कार्यो के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है जिसकी पूर्ति के लिए श्रमिक द्वारा ऋण के रूप में धन प्राप्त किया जाता है। ऋण प्राप्त करने के लिए श्रमिकों के सामने मुख्य समस्या होती है, ऊँची ब्याज दर का होना है, जिसका भुगतान करना कभी–कभी श्रमिकों के लिए संभव नही हो पाता है। ऋण के कारण श्रमिक कर्ज में डूबता जाता है जिससे श्रमिक अपने आर्थिक जीवन स्तर को ऊँचा नही उठा पाते है।

रोजगार संबंधी समस्या :–उद्योगो में अधिकांश श्रमिक अपना रोजगार, परिवार, रिश्तेदारों, ठेकेदारों द्वारा प्राप्त करते है। श्रमिकों को रोजगार उनकी योग्यता के अनुसार नहीं प्राप्त हो पाता है। उद्योग व खदानों में कार्यरत लगभग सभी श्रमिकों ने किसी भी प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त नही किया हैं, इन श्रमिकों की नियुक्ति अस्थायी तौर पर की जाती है, जिससे श्रमिकों को रोजगार के संबंध में चिन्ता बनी रहती है जो श्रमिकों की प्रमुख समस्या है।

महिला श्रमिकों की समस्या :–स्त्री–पुरूष आदिकाल से एक दूसरे के पूरक के रूप में चले आ रहे है, दोनों एक–दूसरे के अभाव में अपूर्ण है। पुरूष स्वभाव व शरीर से कठोर कार्य में सक्षम होते है और स्त्री सरल व सुकोमल कार्यो के लिए, लेकिन यहाँ पर महिलाएँ अधिक आय प्राप्त करने के लिए कठिन से कठिन कार्य करती है। जिसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। महिला श्रमिकों की अपनी आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण गर्भावस्था में भी पर्याप्त अवकाश नही ले पाती है।[11] परिणाम स्वरूप उनकी संतानें रोगग्रस्त होती है तथा महिला श्रमिक का स्वास्थ्य स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जाता है।

निष्कर्ष

इन श्रमिकों में संयुक्त परिवार का महत्व एकांकी परिवार की तुलना में कम हो गया है। उत्तराधिकारी को रोजगार की तलाश और अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं (रोटी, कपड़ा, मकान) को पूरा करना श्रमिक का मुख्य उद्देश्य है। इस प्रकार श्रमिकों के परिवार में संयुक्त परिवार प्रणाली का तेज गति से विघटन हो रहा है।

वर्तमान समय में श्रमिकों को रोजगार प्राप्ति से संबंधित कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिले में उद्योग व खदानों में कार्यरत श्रमिक अनेक बीमारियों से ग्रसित है। उद्योग व खदानों में कार्यरत अधिकांश श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा योजनाओ का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही है। इस विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है, कि उद्योग में कार्यरत अधिकांश श्रमिकों का आर्थिक व सामाजिक जीवन स्तर अति निम्न है जिससे श्रमिकों का पूर्ण विकास नही हो पा रहा है।

सुझाव

श्रमिकों की समस्याओं का मुख्य आधार या कारण उनकी मजदूरी है। अतः श्रमिकों की आर्थिक स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए यहाँ के श्रमिकों को सिर्फ जीवन निर्वाह मजदूरी न देकर इनको इतना पर्याप्त वेतन दिया जाना चाहिए कि वह कम से कम अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। साथ ही उनका जीवन स्तर ऊँचा उठ सके और वह अपनी कार्य क्षमता बनाए रखने में सफल हो सके। यदि कार्य क्षमता बढ़ेगी तो उनके द्वारा उत्पादन कार्य भी बढ़ेगा। निर्माण कार्य में लिप्त मजदूरों की निरक्षरता की स्थिति को सुधारने के लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार किया जाए, उनके निरक्षर जीवन को साक्षर बनाया जाना चाहिए। इन मजदूरों को सरकार द्वारा चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों व विभिन्न नीतियों से अवगत कराना चाहिए, जिससे कि जो नीतियाँ सरकार द्वारा इनके कल्याण के लिए चलाई जा रही हैं, उनका वह पूरा–पूरा लाभ उठा सके। गाँव में स्कूलों की संख्या बढ़ानी चाहिए और बच्चों को शिक्षा के प्रति रूचि जाग्रत करना चाहिए। भवन निर्माण कार्य में लगे श्रमिकों को पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए शासन द्वारा इन क्षेत्रों में संचालित प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में पर्याप्त चिकित्सा स्टॉफ की पदस्थापन करने के साथ ही आवश्यक चिकित्सा औषधियों व उपकरणों की पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिए।

भारत में विभिन्न प्रकार के श्रम, अधिनियम प्रचलित है। फलतः श्रम अधिनियमों की अधिकता के कारण श्रमिकों को किसी भी श्रम अधिनियम का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः श्रम अधिनियम की बहुलता को समाप्त कर एक समान श्रम नीति बनायी जानी चाहिए, जो कि भारत के सभी स्थानों पर सभी प्रकार के श्रमिकों पर समान रूप से लागू हो।

अन्य सुझाव :

- महिला श्रमिकों में परिवार नियोजन के प्रति चेतना जागृत करना अत्यंत आवश्यक हैं, उनके लिये निशुल्क परामर्श और परिवार नियोजन हेतु आवश्यक औषधियों की व्यवस्था की जानी चाहिए, ताकि उनका और उनके परिवार का जीवन स्तर ऊँचा उठ सकें।
- यहाँ के कार्य में कार्यरत् अधिकांष श्रमिक अशिक्षित एवं गरीब है, जिसके कारण इनको, इनके अधिकारों का ज्ञान नहीं होता है, अतः इनके लिये साक्षरता अभियान चलाया जाना चाहिए, जिसके माध्यम से उन्हें शिक्षित किया जाये, ताकि उनके विचारों में परिवर्तन हो सके और उन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान हो, जिससे भविष्य के प्रति वह सजग रहे।

- इन श्रमिकों की पारिवारिक आर्थिक, सामाजिक एंव वैवाहिक जीवन में संतुलन बनाने के लिए प्रयास करना चाहिए।
- महिला श्रमिकों को कार्य के अनुसार मजदूरी उन्हें पुरुषों के समान मजदूरी दी जानी चाहिए।
- श्रमिकों को तकनीकी परिवर्तनों के अनुसार प्रशिक्षित करना चाहिये।
- देश में सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक कल्याण सबंधी सुविधाओं का विस्तार होना चाहिए, ताकि उन्हें उनके कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों एवं अनुशासन की भावना जागृत हो सके।
- निर्माण श्रमिकों के साथ ही सरकार के सामने भी निर्माण श्रमिकों के पंजीकरण की एक बड़ी समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु निर्माण कर्मकार कल्याण मण्डल को नगरपालिका/ नगर निगम से स्वीकृत निर्माणों की जानकारी एकत्रित करना चाहिये एवं यथासंभव निर्माण स्थल पर पहुँच कर निर्माण श्रमिकों का पंजीयन करना चाहिये। निर्माण स्थल पर जाकर पंजीयन करने में मण्डल को अन्य कई जानकारियाँ जैसे श्रमिकों से कार्य करवाये जाने के घण्टे, मजदूरी, विश्राम का अंतराल, महिला श्रमिकों को दी जाने वाली सुविधाएँ आदि भी प्राप्त हो जायेगी तथा अनियमितता होने पर नियोक्ता/ठेकेदार के विरूद्ध कार्यवाही भी की जा सकेगी।
- यहाँ के कार्यों को कम लागत में करवा कर मुनाफा कमाने हेतु ठेकेदार/ नियोक्ता श्रमिकों से अधिक कार्य करवाते हैं। निर्माण श्रमिक कल्याण मण्डल द्वारा श्रमिकों के कार्य घण्टे निर्धारित करवाये जाने चाहिये तथा बड़े निर्माण कार्यों पर उपस्थित श्रमिकों के कार्य निष्पादन के बारे मे समय–समय पर जानकारी एकत्रित करना चाहिये।
- सरकार को आज आवश्यकता है कि निर्माण के कार्य में लगे इन श्रमिकों हेतु रोजगार के किसी एक वैकल्पिक श्रोत के निर्माण हेतु इन्हें प्रशिक्षित करें ताकि समय आने पर वे अपने परिवार का भरण–पोषण कर सकें।
- शासन को कल्याणकारी योजनाओं का क्रियान्वयन करना चाहिए। शासन द्वारा भवन निर्माण श्रमिकों के सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, मजदूरी, रोजगार आदि संबंधी कल्याणकारी योजनाएं चलानी चाहिए, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति का अधिक से अधिक विकास हो सके।

संदर्भ सूची

1. जैन के.सी 1983ः अर्थशास्त्र के सिद्धांत, साहित्य भवन, आगरा
2. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू. झारखंड जीओभी.एसी.इन
3. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू. झारखंड जीओभी.एसी.इन
4. भारत की जनगणना 2011
5. डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू. झारखंड जीओभी मुरी.एसी.इन
6. अवस्थी एस.के.:1997 श्रमिक विधियाँ, इण्डिया पब्लिसिंग कम्पनी, इन्दौर,
7. कुल श्रेष्ठ आर.एस. 1999 औद्योगिक अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा

8. रूद्रदत्त, के.पी.एम. सुन्दरम 2010 भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली, सैतालीसवाँ संस्करण,

9. सिन्हा वी.सी. 1991ः अर्थशास्त्र, मयूर पेपरबैक्स, ए. 95 सेक्टर– 5, नोएडा,

10. राय खेलकर 1992. औद्योगिक अर्थशास्त्र, नाथ प्रकाशन, नारसीबाग, औंरगाबाद

11. दास्ताने संतोष एंव कुलकर्णी 1995. औद्योगिक अर्थषास्त्र, सेकठ ब्रदर्स, नागपुर,

एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्तियों की दिनचर्या, अधिकार व कर्तव्य

डॉ0 हरिओम मिश्र
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
उदित नारायण पी0जी0कालेज,
पडरौना, कुशीनगर (उ0प्र0)

एड्स एक ऐसी बीमारी है, जो एच0आई0वी0 नामक विषाणु से संक्रमण के पश्चात् होता है। इसमें रोगी के शरीर की रोग प्रतिरोधक शक्ति क्रमशः कमजोर होती जाती है, साथ ही अस्वाभाविक रोग जैसे–कैंसर एवं अन्य गम्भीर संक्रमणों से व्यक्ति ग्रसित हो सकता है। यह वायरस केवल मानव शरीर में पाया जाता है। यह वायरस शरीर की सुरक्षा प्रणाली अर्थात् रोग प्रतिरोधक शक्ति को कमजोर करता है। यह प्रक्रिया धीरे–धीरे और प्रायः कई वर्षों में पूर्ण होती है। संक्रमण के वर्षों बाद जब शरीर की रोग प्रतिरोधक प्रणाली धीरे–धीरे कमजोर होने लगती है तब इसके कारण शरीर पर रोग के लक्षण उभरने लगते हैं, तब व्यक्ति को पता चलता है कि वह एड्स का शिकार हो गया है।

ज्योंहि कोई व्यक्ति एच0आई0वी0 संक्रमित होता है तो वह सदमें से लेकर हालात को नकारने, ग्लानि, शर्म और गुस्से तक की सारी भावनाओं को महसूस करने लगता है। लेकिन इस अवस्था में व्यक्ति को स्वयं को अकेला नही समझना चाहिए और जिस केन्द्र पर उसकी जांच की गई हो वहां जानकारी सहायता एवं परामर्श प्राप्त करना चाहिए। व्यक्ति को एच0आई0वी0 से प्रभावित अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में भी रहना चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग व्यक्ति को 'एच0आई0वी0 के साथ स्वस्थ उत्तम जीवन कैसे जिएं' के सम्बन्ध में सलाह एवं सुझाव दे सकते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति को एक महत्वपूर्ण फैसला यह करना होगा कि वह अपनी एच0आई0वी0 की स्थिति के बारे में बताए या नहीं। यह अत्यन्त निजी फैसला होता है। लेकिन किसी विश्वास पात्र को यह बताना हमेशा सही रहता है, क्योंकि मुश्किल समय और कठिन हालात में वह आपकी मदद कर सकता है। चूँकि एच0आई0वी0 की वजह से व्यक्ति के शरीर में बीमारियों से लड़ने की ताकत कम हो जाती है, इसलिए जरूरी है कि व्यक्ति स्वस्थ रहे तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन करे एवं पौष्टिक आहार ले। जुकाम और फ्लू जैसे आम रोगों और संक्रमणों से बचने की कोशिश करे। शारीरिक सम्बन्धों के दौरान हमेशा कण्डोम का इस्तेमाल करे, दूसरों की सुइयों का इस्तेमाल न करें तथा यदि बच्चे को जन्म देना हो तो चिकित्सक से परामर्श करे।

एच0आई0वी0 का इलाज

एच0आई0वी0 का कोई इलाज नही है। एन्टी–रेट्रो–वायरल (ए0आर0वी0) कहलाने वाली दवाईयां जरूर उपलब्ध हैं। ये दवाईयां व्यक्ति की इम्यून प्रणाली को मजबूत रखने में सहायता करती हैं। इस तरह वे बीमारी से लड़ना जारी रख सकते हैं और एड्स की शुरूआत को टाल सकते हैं। ए0आर0वी0 दवाईयां भारत के कुछ जिला अस्पतालों में मुफ्त उपलब्ध है। यदि व्यक्ति को एच0आई0वी0 का संक्रमण है तो इन दवाईयों की जरूरत है या नहीं, इस सम्बन्ध में चिकित्सक से बात करनी चाहिए। ए0आर0वी0 दवाईयों के सम्बन्ध में कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं। जैसे– एक बार ए0आर0वी0 दवाईयों का सेवन शुरू करने पर इन्हे उम्र भर लेना होता है तथा इन दवाईयों के कारण दस्त, मितली, उल्टी आना, वजन बढ़ना या वजन घटना जैसे बुरे असर हो सकते हैं। अपनी

कमजोर इम्यून प्रणाली के कारण एच0आई0वी0 पाजिटिव व्यक्ति कई संक्रमणों और बीमारियों से ग्रस्त हो सकते हैं जिनका इलाज आसानी से उपलब्ध दवाईयों से किया जा सकता है। एच0आई0वी0 पाजिटिव व्यक्ति आमतौर पर जिन बीमारियों से ग्रस्त हो सकते हैं उनमें टी0बी0, निमोनियां और त्वचा के संक्रमण शामिल हैं। यदि व्यक्ति एच0आई0वी0 पाजिटिव है और जल्दी बीमार पड़ता है तो उसे तुरन्त चिकित्सक को दिखाना चाहिए जिससे बीमारी का सही इलाज हो सके।

एच0आई0वी0 / एड्स पीड़ित व्यक्ति की देखभाल

एच0आई0वी0 / एड्स पीड़ित व्यक्ति को संयम एवं अनुशासन से पूर्ण विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। संक्षेप में इसे हम निम्नवत् देख सकते हैं–

दिनचर्या

एच0आई0वी0 / एड्स की अवस्था में स्वयं की देखभाल करना जीवन के प्रति सकारात्मक होना है। संक्रमित व्यक्ति को चाहिए की वह अपने सोने और उठने का समय निश्चित करे। सुबह की ताजी हवा शक्ति भरी होती है तथा धूप से विटामिन 'डी' मिलता है जो त्वचा के लिए अच्छा है। व्यक्ति कुछ समय अपने परिवार के साथ बिताए इससे खुश रहने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। अपनों के साथ समय बिताने से व्यक्ति उनके प्रति प्रेम, आदर और कर्तव्य से जुड़े रहेंगे तथा इससे बीमार रहने का ख्याल भी दूर रहेगा। किसी भी अन्य शारीरिक बदलाव के बारे में चिकित्सक को जरूर बताएं क्योंकि व्यक्ति स्वयं अपने शरीर को बेहतर जानता है और इसकी देखभाल भी व्यापक तरीके से कर सकता है।

उचित आहार

रोगी का आहार संतुलित होना चाहिए, वह मंहगा ही हो यह जरूरी नही है। आहार में शरीर निर्माण, शक्तिदाता एवं शरीर रक्षा के लिए तत्व शामिल होने चाहिए। सिगरेट और शराब खतरनाक है। यह शरीर के किसी भी भाग के लिये लाभदायक नही है। इनका प्रयोग न करें। खाने के समय को नियमित करना चाहिए। नाश्ता, दिन का भोजन, शाम का नाश्ता और रात का भोजन सब जरूरी है। जब भूख लगे तब खाएं लेकिन जरूरत से ज्यादा न खाएं। तरल यानी पीने वाली चीजें जैस–सूप, नारियल पानी या जूस इत्यादि भी लें। अपनी पसन्द का शाकाहारी या मांशाहारी भोजन खाएं तथा मांशाहारी भोजन खाते समय ध्यान रखें कि वह साफ हो और पूरी तरह से पका हो। सही भोजन का मतलब है जो शरीर को शक्ति दे और हमें बीमारियों से बचाए। शरीर को तन्दरूस्त बनाए रखने वाला भोजन जैसे–बीन, फलियां, मटर, दालें, मूंगफली, अण्डा, मांस, मछली, दूध इत्यादि, शरीर को स्वस्थ रखने वाला भोजन जैसे–फल, हरी पत्तेदार सब्जी, साग, पीले या नारंगी रंग के फल–पपीता, सन्तरा, गाजर इत्यादि तथा साथ ही शक्ति देने वाला भोजन जैसे–चावल, गेहूँ, मक्का, आलू, तेल मांस, गुड़ इत्यादि खा सकते हैं। सुबह का नाश्ता बहुत जरूरी है, इसमे व्यक्ति सूजी, चावल या आटे का उपमा (हरी सब्जी काट कर मिला सकते हैं) भी खा सकते हैं। इडली, डोसा, साम्भर, सूजी या गेहूँ का दलिया, खिचड़ी या पोहा भी ले सकते हैं। रोटी के साथ हरी सब्जी ले सकते हैं। दही, केला, आम, पपीता, अण्डा, ताजे फल, दूध इत्यादि भी ले सकते हैं। दिन के भोजन में रोटी, चावल, सब्जी, दही और दाल लें, खाने में पत्तेदार सब्जी जरूर लें। रात का भोजन हल्का करें तथा सोने से कम से कम एक घण्टा पहले भोजन करें। पीने के पानी पर विशेष ध्यान दें एवं निश्चित करें कि पानी न केवल दिखने में साफ हो बल्कि कीटाणु रहित

हो। इसके लिए उबालकर ठण्डा किया पानी ही पिएं तथा प्रयोग में आने वाले सभी बर्तनों को साफ पानी से धो लें।

भोजन सम्बन्धी कुछ अन्य सावधानियां

उक्त के अतिरिक्त भोजन सम्बन्धी कुछ अन्य सावधानियां निम्नवत् हैं –

- खाने को धीमी आंच पर पकाएं।
- ज्यादा तेल मशाले का प्रयोग न करें।
- कच्ची साग सब्जी को धोकर पकाएं।
- फल के रस, नींबू पानी और स्वच्छ पानी पिएं।
- जहां तक हो सके बाहर का खाना न खाएं।
- खुली–कटी, कच्ची वस्तुओं का सेवन न करें।
- तेल, घी, गुड़, चिकनाई कम मात्रा में खाएं।
- दूध, अण्डा, मक्खन, मछली, दालें सामान्य मात्रा में खाएं।
- चावल, गेहूँ, मक्का, हरी सब्जियां अधिक मात्रा में खाएं।

आराम और विश्राम

अन्य बीमारियों के समान ही एच0आई0वी0 रोगी के शरीर को अधिक आराम की आवश्यकता होती है। जब भी कोई थक जाएं उसे संगीत सुनकर, समाचार पत्र, मनोरंजक पत्रिकाएं, तथा पुस्तके पढ़कर या अपने परिचितों से बात–चीत कर शरीर को विश्राम देना चाहिए।

काम

जब तक कोई काम कर सके उसका काम करना अच्छा है तथा पैसा कमाना उचित है। इसके द्वारा वह कार्यसक्षम बना रहता है। उसके कामकाज की जगह पर अन्य सहयोगी और दोस्त होते हैं तथा काम द्वारा वह चिंताओं को भुला सकता है। कम पैसे में अगर कोई रोजगार जमा सके तो और भी बेहतर है। इन बातों की जानकारी के लिए अपने पास की स्वयं सेवी संस्था तथा जिला स्तरीय व राज्य स्तरीय नेटवर्क से भी बात कर सकते हैं।

सुरक्षित यौन सम्बन्ध

यदि कोई व्यक्ति पहले से एच0आई0वी0 संक्रमित है तो उसके लिए अन्य यौन संचारित रोग होने का खतरा बना रहता है, इसलिए उसे यौन सम्पर्क से बचना चाहिए। प्रेम प्रदर्शन तथा अपनापन दिखाने के अन्य तरीके भी हैं। यदि यौन सम्भोग से बचना सम्भव न हो तो प्रत्येक बार निरोध का प्रयोग अवश्य करें। अपने साथी को संक्रमण से बचाना भी महत्वपूर्ण है।

पारिवारिक जीवन और बच्चे

एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित माता–पिता अपने बच्चों तथा परिवार की निम्न तरीके से सहायता तथा सहयोग कर सकते हैं –

- उनके साथ समय बिताकर।
- उनके लिए ''इच्छापत्र'' बनाकर।
- भविष्य में रिश्तेदारों द्वारा बच्चों की देखभाल करने के लिए व्यवस्था करके।
- यदि संभव हो तो आर्थिक व्यवस्थाएं करके।
- बच्चों के लिये संपत्ति सुरक्षित रखकर।

मानसिक सुरक्षा

कई एच0आई0वी0/एड्स पीड़ित व्यक्तियों को धार्मिक/दार्शनिक विचारों एवं सिद्धान्तों द्वारा मानसिक शान्ति और शक्ति मिलती है। वे समझते हैं कि उनका भय समाप्त हो चुका है। यह उन्हें खराब विचारों से छुटकारा दिलाने में और सामान्य जीवन जीने में सहायक होते हैं।

चिकित्सा सहायता प्राप्त करना

एच0आई0वी0 संक्रमित व्यक्तियों की रोग–प्रतिरोध शक्ति कमजोर होने के कारण वे आसानी से बीमार होते हैं। जैसे ही बीमारी के लक्षण दिखें तत्काल चिकित्सक से संपर्क करें अन्यथा इसमें विलंब करने से कोई गंभीर बीमारी विकसित हो सकती है। चिकित्सक द्वारा बताई गई बातों को ठीक तरह से समझें तथा दी गई दवाएं नियमित रूप से लेते रहें। किसी भी तरह की शंका, नया बदलाव या परेशानी चिकित्सक को जरूर बताएं। सी0डी0–4 संख्या कम होने की वजह से एच0आई0वी0 संक्रमित व्यक्ति किसी भी बीमारी के चपेट में आ सकते हैं। अतः यह भी कोशिश करनी चाहिए की किसी भी बाहरी संक्रमण से बचा जाए। अगर अपने चिकित्सक या स्वास्थ्य सलाहकार के पास आने जाने में दूरी, समय, पैसा या अन्य कोई कारण बाधक हो तो कम से कम फोन से सम्पर्क अवश्य बनाएं रखें। एच0आई0वी0 संक्रमण की अवस्था में कुछ सामान्य बीमारियां जैसे–हरपीज, मुँह के अन्दर के छाले, डायरिया, खांसी या सांस लेने में परेशानी इत्यादि हो सकते हैं। इनसे निम्नवत् बचा जा सकता है–

हरपीज

इसे नागिन भी कहा जाता है। इसमें चेहरे या बदन के एक भाग में पानी भरे दाने निकल आते हैं। फुन्सी या फफोलो की तरह निकले दानों में जलन और दर्द होता है। अक्सर छाती, कमर, चेहरे, होठ या गुप्तांगो पर इसका प्रभाव होता है। इस अवस्था में गुनगुने पानी में स्नान करें, शरीर को सुखा व स्वच्छ रखें तथा यथा शीघ्र अपने चिकित्सक या स्वास्थ्य सलाहकार से सम्पर्क करें।

मुँह के अन्दर के छाले

मुँह के अन्दर के छाले होने पर चिकित्सक को दिखाएं और उनकी सलाह के अनुसार चलें। पानी में पोटैशियम परमैग्नेट के दाने डालकर नीले पानी से गरारे कुल्ला करते रहें। दही के सेवन से भी आराम मिल सकता है। विटामिन 'बी कॉम्प्लैक्स' की गोलियों का सेवन भी लाभदायक है। खाने के पहले अमरूद के पत्ते चबाने से भी आराम मिलेगा। इस अवस्था में अपने मुँह की सफाई का विशेष ध्यान रखें तथा ब्रश करते समय हल्के या नर्म ब्रश से काम लें।

डायरिया (दस्त और उल्टी)

पाचन तंत्र के अन्दर किसी संक्रमण से बार–बार शौचालय जाने की आवश्यकता पड़ती है। पतले दस्त या जल युक्त मल के बार–बार आने से शरीर में तरल पदार्थों की कमी हो जाती है। यदि दिन भर में पांच से अधिक बार शौचालय जाने की स्थिति हो तो चिकित्सक से सलाह लें साथ ही ओ0आर0एस0 का घोल बनाकर लेते रहें। हल्का भोजन जैसे दाल का पानी, केला, दही इत्यादि का सेवन करें।

खाँसी या साँस लेने में परेशानी

तीन महीने से लगातार चलती खांसी, टी0बी0 या निमोनिया का लक्षण हो सकता है। इसके साथ अगर हल्का बुखार रहे तो तुरन्त अपने चिकित्सक से मिलिए। बताई हुई दवा का सेवन करते हुए भोजन और सफाई पर विशेष ध्यान दें। गर्म चाय में अदरक का टुकड़ा डालकर पीने से गले को आराम पहुँचेगा। गर्म पानी की भाप, सांस की नली को खोलती है, इसमें तुलसी के पत्ते तथा कपूर

डालने से खांसी में फायदा होता है। शरीर में किसी भी प्रकार के अन्य शारीरिक बदलाव होने की दशा में संक्रमित व्यक्ति को अपने चिकित्सक से मिलकर तत्काल बात करनी चाहिए, क्योंकि व्यक्ति स्वयं अपने शरीर को बेहतर जानते हैं और इसकी देखभाल वे बेहतर कर सकते हैं।

एच0आई0वी0 / एड्स पीड़ित व्यक्ति के अधिकार

हर भारतीय नागरिक को संविधान से कुछ अधिकार मिले हैं। एच0आई0वी0 / एड्स पीड़ित होने के कारण कोई भी व्यक्ति को इन अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता। सामान्यतया ये अधिकार निम्नवत् हैं–

स्वीकृति का अधिकार

एच0आई0वी0 / एड्स पीड़ित व्यक्ति के इलाज के प्रत्येक कदम पर उसकी स्वीकृति आवश्यक है। यह स्वीकृति बिना किसी बल, भय, झूठ या गलत प्रभाव के कारण नहीं होनी चाहिए। चिकित्सक को इलाज से पहले व्यक्ति को उसकी बीमारी व इलाज के बारे में सब कुछ साफ–साफ बता देना जरूरी है। इस जानकारी से ही इलाज करवाने वाला यह जान पाएगा कि वह इसके लिए तैयार है कि नही।

गोपनीयता का अधिकार

व्यक्ति द्वारा चिकित्सक को दी गई जानकारी केवल उसके इलाज के लिए ही है। व्यक्ति को अधिकार है कि चिकित्सक आपके एच0आई0वी0 संक्रमित होने की जानकारी गोपनीय रखे। यदि व्यक्ति को कभी भी लगे कि उसके अधिकारों का मान नही रखा गया है और कानून की मदद लेने में उसका एच0आई0वी0 संक्रमित होना सबको जाहिर हो जाएगा, तो वह किसी और नाम से भी मुकदमा कर सकता है। कानून में इसके लिए भी प्राविधान है।

भेद–भाव के विरूद्ध अधिकार

भारत में सब नागरिकों को समानता का अधिकार है। कानून के अन्तर्गत कोई भी सरकारी संस्था किसी भी व्यक्ति के लिंग, धर्म, जाति, जन्म स्थल इत्यादि के आधार पर सामाजिक या व्यवसायिक भेद–भाव नहीं कर सकती। यह स्थिति एच0आई0वी0 संक्रमित व्यक्ति के साथ भी लागू होती है और उसके साथ किसी भी प्रकार का भेद–भाव नहीं किया जा सकता।

जीविका कमाने का अधिकार

व्यक्ति यदि शारीरिक एवं मानसिक रूप से कार्य करने में सक्षम है, तो एच0आई0वी0 संक्रमित होने के कारण उसे कार्य से नहीं निकाला जा सकता और उसे एच0आई0वी0 जांच के लिए बाध्य भी नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति को वह प्रत्येक लाभ जो अन्य कर्मचारी को मिलता है चाहे वह प्रोविडेन्ट फण्ड हो या पेंशन उस पर अन्य कर्मचारियों की भांति उसका भी अधिकार है। यह अधिकार जीवन काल या मृत्यु के बाद पाए जाने वाले हर लाभ के लिए है।

अन्य अधिकार

उपरोक्त अधिकारों के साथ–साथ व्यक्ति को स्वास्थ्य सेवाएं प्राप्त करने का, शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश करने का, सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग का, महिलाओं को पारिवारिक जीवन जीने का तथा व्यक्तियों को अपने बच्चों के साथ रहने जैसे कई अन्य अधिकार प्राप्त हैं।

अधिकारों के साथ–साथ एच0आई0वी0 संक्रमित व्यक्ति के कुछ कर्तव्य भी हैं, जिनका पालन कर वह स्वयं के साथ–साथ अपने परिवार को भी एक खुशहाल जिन्दगी दे सकता है। ये कर्तव्य निम्नवत् हैं–

- व्यक्ति को ऐसी योजनाएं बनानी चाहिए जिससे उसके परिवार को सहारा मिले।
- अपने प्रियजनों की देखभाल का बन्दोबस्त करें।
- आपके बच्चों की कहां अच्छी परवरिश होगी यह भी पता लगाएं तथा रिश्तेदार या किसी ऐसी संस्था के बारे में जानकारी रखें।
- अपने बाद अपने परिवार की आय के सम्बन्ध में भी सोचें।
- यदि कोई बचत खाता, बीमा, जमीन या मकान है जिसे आप अपने बच्चों के नाम करना चाहते हैं तो इस सम्बन्ध में कानूनी सलाह लेकर यथाशीघ्र उसका पालन करें।
- पैतृक सम्पत्ति के बारे में भी जानकारी रखें।
- आपके बाद आपके बच्चों को इस सम्पत्ति से बेदखल तो नही किया जाएगा, इस बारे में जानकारी रखें और यह भी निश्चित करें कि कानूनी कागजात सही हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Davidson's, 1987, Principles and Practice of Medicine, English Book Society/ Churchill Livingstone
- राजपूत राजेन्द्र, 2008, एड्स एवं यौन स्वास्थ्य शिक्षा, सुमित प्रकाशन, आगरा एवं दिल्ली
- एड्स क्या जानना चाहिए, बी0बी0सी0, वर्ल्ड सर्विस ट्रस्ट
- एच0आई0वी0 के साथ जी रहे व्यक्तियों हेतु जीवन दर्शिका, कुछ आवश्यक जानकारी, उ0प्र0 राज्य एड्स नियंत्रण समिति, लखनऊ

Gandhian Perspective on Rural Development: An Overview

Dr. Anju Beniwal
Assistant Professor (Sociology)
Govt. Meera Girls College, Udaipur (Raj.)

Abstract

Gandhiji believed that India will have to live in villages, not in towns, in huts not in palaces. He held this conviction by saying that "If village perishes, India will perish too". He found that the progress of the country lies in the development of majority of its rural villages; develop rural economy, industry and rural skills. Gandhiji found the only way of bringing hope of good living to the rural people is by making the village the central place in the economic programme. He always said that India lives in villages. He was conscious of the fact that far industrialization would destroy the Indian society by eliminating our decentralized rural industries and further leads to improvement. The once self-sufficient and self-contained rural villages have been drained progressively. He wanted to reverse this trend and bring about a rural reconstruction based on sound scientific and spiritual values.

He advocated that true democracy and justice could only be dispensed at the village level with decentralized administration and judicial system. Thus according to his sarvodaya model, welfare of all cannot be realized without practicing poverty voluntarily, that is aparigraha. Gandhi himself has strongly recommended the principle of non-possession for attaining sarvodaya. This paper seeks to shed new light on this important issue by examining it in the context of contemporary society. This examination will be informed by the theoretical analysis.

Keywords: Sarvodaya, Rural, Poverty, Development, Self-sufficiency.

Introduction:

In the Indian context rural development may be defined as maximizing production in agriculture and allied activities in the rural areas including development of rural industries with emphasis on village and cottage industries. Gandhian strategy of rural reconstruction was based on village swaraj and swadeshi movement. The basic principle of village swaraj as outlined by Gandhiji are trusteeship, swadeshi, full employment, bread labor, self-sufficiency, decentralization, equality, NaiTalim etc. Thus the idea of ideal village of Gandhian dream was a comprehensive one, encompassing the economic, social, political and educational dimensions. Gandhiji gave emphasis on truth and non-violence in every aspect of human life and said, "The swaraj of my opinion will come only when all us are firmly persuaded that our swaraj has got to be won, worked and maintained through truth and ahimsa alone' (Gandhi, 1959, p.1 l). The main objective of Gandhian economics and

rural development was social justice and human development These are laudable objectives and equally significant in present scenario. The strategy comprised of several elements, some of these are-

Trusteeship

According to Gandhiji, trusteeship is a way of life rather than just a method to achieve a particular end. According to his holistic approach, "everything on this earth belongs to God and is from God. Therefore, it was for this people as a whole not for a particular individual. Everybody on this earth has a natural right to at least the basic necessities of life, just like the birds and the beasts have. Gandhiji rightly held the view that "no person can amass wealth without the cooperation, willing or forced, of the people concerned".

If this knowledge were to penetrate and spread amongst the poor, they would become strong and learn how to free themselves from the crushing inequalities which have pushed them to the verge of starvation. But the oppressed should not take recourse to violent methods. In the Gandhian scheme of things, the principle of cooperation, love and service is most important and violence has no place in it. Violence is against "moral values' and civilized society is inconceivable in the absence of moral values. If somehow, an individual had more than his proportionate share, he was a trustee of that portion for God's people" (Patil, 1983, p.138).He realized the need for integrated rural development and believed that education, health and vocation should be properly integrated. He emphasized the need for education and training which he called 'Naitalim' (New training) for rural reconstruction. As land belongs to God and thus belongs to the community and therefore should be used for the welfare of the community. By peaceful non-violent persuasion, the hearts of landowners should be changed to accept the trusteeship idea. If this is not accepted by them, the poor should organize non-violent non co-operation and civil disobedience struggle against them. He believed that the rich cannot accumulate wealth without the co-operation of the poor.

Swadeshi

According to Gandhiji, "Swadeshi is that spirit in us which restrict us to the use and service of our immediate surroundings to the exclusion of the more remote" (Sharma, 1992, p.120).In economic terms, a strict adherence to Swadeshi doctrine paves the way to decentralized self-sufficient economy. The buyers and sellers having a concern for each other, jointly work for the development of their local areas using local resources. Gandhiji emphasized, "every village of India will almost be a self-supporting and self-contained unit exchanging only such necessary commodities to other villages where they are not locally producible." (Ibid.) He established the "All India Village Industries Association" at Wardha and devoted most of his time towards reorganization of Indian villages. Gandhiji started experiments in rural life-style such as revival of village crafts and agro processing industries, village cleanliness, diet reforms, etc., so that villages could be

developed as ideal surroundings to live in. He concentrated on the removal of untouchability also.

Before moving to Sevagram village in April 1936, Gandhi had started experiments in various industries at Wardha. He trained many workers in rural reconstruction work such as making Neera from palm trees, jaggery, etc. and in diary, leather work, pottery, oil pressing, bee-keeping etc. He shifted the headquarters of All India Spinners' Association to Sevagram. Since 1936 till his last, Sevagram Ashram remained his headquarters. Gandhi had organized various constructive work institutions to guide the nation on the road to nonviolent reconstruction of its socio-economic base. The man, who fought the mightiest empire in the world, had also simultaneously developed and demonstrated a new way of constructive work for the establishment of a non-exploitative and non-violent social order. This was his ideal in life and a message for the mankind.

The decentralized economic units would thus facilitate the best possible use of local raw materials, talents and manpower; promote occupational equilibrium, ecological balance and co-operative living. The village would be able to produce whatever is required, with the help of local resources and would be intended with whatever has been produced in closer surroundings. (Ibid. p.123)

Self-Sufficiency

Gandhiji insisted on the self-sufficiency of Indian villages. Self-sufficiency was advocated by him as a basic principle of life because dependence brings in exploitation which is the essence of violence. The poor is exploited by the rich, the village by the city and the undeveloped country by the developed ones due to lack of self-sufficiency (Sharma, 1992, p.119).

He suggested that villages should be self-sufficient i.e. they should produce their own food, clothing and other articles needed for meeting their basic needs. He insisted on the promotion of village or cottage industries and handicrafts because they can provide employment, necessary to meet the basic needs of the villagers and also facilitate village self-sufficiency(Bora,1994, p.484). Gandhiji said that it was not the British rule but the modem civilization nourished by their rule, which was the real cause of economic, distress i.e., poverty and unemployment. He further said, "if the British rule were replaced tomorrow by the Indian rule based on modern methods, India would be no better" (Panday, 1991. p.43).

Swaraj

Gandhiji used the term 'Swaraj" with a definite meaning and significance i.e. self-rule and self-restraint. He defined swaraj in terms of individual and nation. Swaraj of people means the sum total of the self-rule of the individuals. In terms of national swaraj, it is the sum total of all activities which go up to build an ideal state based on moral force. The people of such state are conscious of their moral strength in its collectivity. Gandhiji tried to identify the concept of swaraj state with the Ramraj, the ideal state of Shri Rama. While

propagating his Swaraj vision, he wanted to create a non-violent, non-exploitative and non-competitive social order (Ibid. p.42).The concept of 'Rama Rajya' is the basis of Gandhiji's idea of an ideal social order. Gandhi defined Rama Rajya as "sovereignty of the people based on moral authority". He did not view Rama as a king, and people as his subjects. In the Gandhian scheme, 'Rama' stood for God or one's own 'inner voice' Gandhi believed in a democratic social order in which people are supreme. Their supremacy is, however, not absolute. It is subject to moral values.The basic theme of Gandhiji's economic theory was village self-sufficiency or Gram Swaraj. It meant that every village should be self-sufficient in two basic requirements - food and clothing.

Every member of the family will play the charka and spin yam. The village weaver will play the loom and produce the cloth necessary for the village. Similarly, the village should produce its own rice, vegetables etc. Food and clothing will not have to be imported into the village from outside. Necessarily, it meant a particular lifestyle -the lifestyle of plain living and high thinking".Village economy should be planned with a view to providing full employment to all the adults of the village. Each man should be guaranteed employment to enable him to meet his basic needs in the village itself so that he is not forced to migrate to towns. In the ultimate analysis full employment should be linked with equality.

In 1935, Gandhiji started his rural reconstruction activities in Sevagram to implement his idea of Constructive Programme which included items such as the use of Khadi, promotion of Village Industries, Basic and Adult Education, Rural Sanitation, upliftment of the Backward Classes, the welfare of Women, Education in Health and Hygiene, Prohibition and propagation of the Mother Tongue (Maheshwari, 1995, p.28).

The four characteristics embodied in Gandhi's idealized village would be:

1) Access to an ever-expanding scientific and technical base in two areas, individual healthcare and assistance in food production;

2) Respect and codes of conduct in human actions and toward natural resources;

3) A democratic political institutional framework; and

4) Physical and electronic linkages between the village and both rural and urban areas.

Other ideal village goals which Gandhi intimated were the inclusion and provision for the full population range in demographics, a desire to diminish the divide in access to educational as well as economic opportunity, and a job-led economy rather than a capital intensive one.

Conclusion:

Theoretically, Gandhian approach to rural development may be labelled as 'idealist'. It attaches supreme importance to moral values and gives primacy to moral values over material conditions. The Gandhians believe that the source of moral values in general lies in religion and Hindu scriptures. Gandhi, however, admitted that in olden times tyranny and oppression were in fact practiced by feudal chiefs. But, "odds were even". Today the odds are heavy. It is most demoralizing." In this way in the Gandhian scheme of things the

ancient 'republic', an Indian village without tyranny and exploitation serves as a model unit. Resources for Gandhian Approach to managing village affairs would be raised from the villages.

Moreover, industrialization replaces manpower and hence it adds to unemployment. In a country like India, where millions of labourers in the villages do not get work for even six months in a year, industrialization will not only increase unemployment but force labourers to migrate to urban areas. This will ruin villages. According to Gandhi, there would be no objection to villagers using even the modern machines and tools that they could make and could afford to use. Only they should not be used as a means of exploitation of others.

References:

Panday, B.P.1991. *Gandhi and Economic Developmen*t, New Delhi:Radiant Publishers, p.43.

Ibid. p.42.

GandhiM.K. 1959.*lndia of My Dreams*, Ahmedabad:Navajivan, Publishing House, p.1 l.

Bora,P.M. February, 1994.*Gandhian Model of Rural Development.*Khadi Gramodyog, Journal of Rural Economy, Bombay. Vol. 40(5),p.484.

Patil,S.H. 1983. *Gandhi and Swaraj*. New Delhi:Deep and Deep Publications, p.138.

Sharma,Shashi Prabha.1992.*Gandhian Holistic Economics*. New Delhi:Concept Publishing Co.,p.119.

Sharma,Shashi Prabha.1992.*Gandhian Holistic Economics*. New Delhi:Concept Publishing Co.,p.120.

Ibid.

Ibid. p.123.

Maheshwari,Shriram. 1995.*Rural Development in India: A Public Policy Approach*. New Delhi:Sage Publications, p.28.

Food Hygiene an Aspect of Good Health

Neelu Srivastav
M.Sc. M.Phil, NET (Home Science)
Research Scholar
L.N. Mithila University,
Kameshwar Nagar, Darbhanga.

Abstract

Poor health has repercussions not only for women but also their families women in poor health are more likely to give birth to low weight infants. They also are less likely to able to provide a hygienic food and adequate care to the children so women should be aware about food hygiene and food safety, only not quantitative deficiency of food but also qualitative deficiency is also responsible for poor health the home should be free from harmful agent. These are food poisoning especially women should pay a keen observation towards it. Poor safe and unsafe drinking water have posed major health problem in India. Water and sanitation related infections and disease of the alimentary tract constitute 60-80% of illness in India. The present paper dealt with the various aspects of food hygiene and how to remain health.

Key Words: Health, Hygiene, Food, Disease, Food Poisioning, Bacteria

Introduction:

In India several diseases such as diarrhea, dysentry, typhoid intestinal helmintuhs and choloera are very common. These diseases have a direct correlation between hygiene and health so we should pay proper attentions on hygiene to eliminate these diseases. Any one can get food poisoning but some people including baby's children, older people pregnant women and people with weakened immune systems are more likely to have serious symptoms around 80.00 people in the UK reports food poisoning each year. Food poisoning has a range of symptoms including diarrhea, Stomach pains, nausea vomiting depending on the cause and the person affected it can lead gastroenteritis more serious illness or even to death.

Food poisoning is usually caused by micro-organisms including bacteria viruses and molds the spread of these germs can be prevented by practicing good food hygiene. The most serious type for food poisoning is caused by bacteria. Bacteria multiply best in a moist environment between 5^0C and 63^0C. Just a single bacterium on an item of food, left out of the fridge over night could generate many millions of bacteria by the morning enough 10 make ill if eaten. Storing food below 50^0C Prevent bacteria from

multiplying and cooking food at temperatures over 70^0C will kill of any existing bacteria. Bacteria that cause food poisoning are found in many foods including-

- Meat and meat product in particular poultry and pets, see foods
- Egg and raw egg products in particular mayonnaise
- Unpasteurized milk or contaminated after pasteurization
- Soft and mild ripened chesse. Cocked foods in particular fried rice and pasts especially if these have not been cooled and stored properly
- Unwashed food and vegetables.

  Food poisoning from bacteria can occur in different ways.
- Some bacteria release poisons called Toxins which may give you symptoms of food poisoning.
- Other bacteria multiply in the body first before causing symptoms the delay between lating the contaminated food and developing symptoms is known as the incubation period. This can be a few hours or up to a few days.

Personal and Kitchen Hygiene:

Women should maintain high level of personal and kitchen hygiene is important and effective ways to stop germs from spreading.

- Wash your hands and nails with hot soapy water before handling food before handling cooked and uncooked foods and after going to toilet.
- Rinse your hands well and dry them on clean hand towel, a disposable paper or under a hand dryer wet hands transfer gems more effectively than dry hands.
- Use different cloths for different jobs (Eg. washing up, cleaning surface) wash them regularly and on the hot circle or soak them in a dilute solution of bleach. Wipe down and disinfect surface and utensils regularly, using detergent or dilute solution of bleach.
- Wash up using hot soapy water use Rubber gloves if necessary.
- Don't handle food if you have stomach Problems such as diarrhea and vomiting or if your are sneezing or coughing frequently.
- Cover up cuts and sores with water proof plasters.
- If possible remove ring watches and bracelets before b handling food germs can hide under these.
- Bacteria can spread from raw food in particular meat, to food that has already been cooked or is eaten raw.
- Use separate chopping boards for preparing raw meat, poultry and see foods and for fresh products such as salad fruit and vegetables.

- Never use a marinda that has already been a used raw meat or cooked food it has been boiled properly.
- Always use clean plate to serve.
- After using a knife or other utensil on raw meat clean thoroughly before using for other foods.

It is very important that food is stored in the right place and at the correct temperature.

- Always check labels for guidance on where and how long to be stored food in particular and frozen food.
- Store fresh or frozen food in the Fridge or freezer within two hours of Purchase sooner if the weather is hot.
- Allow meat before to cool to room Temperature before storing them in the Fridge ideally within two hours of Preparation.
- Use leftover within two days cooked rice should keep only for one day.
- Store raw food such as meat in air tight containers.
- Defrost frozen foods in the fridge.
- Do not over fill the fridge.
- Do not stored open tins of food in the fridge.

If food is not cooked at a high enough temperature bacteria can still survive following advice will help you to cook safely.

- Follow the recipe or packet instruction during cooking for time temperature etc.
- Take special care that pork, sausages burgers and poultry are cooked enough and are not pink in the middle.
- Do not cook to for in advance.
- Only reheat food once and serve piping hot.
- Use a food thermometer to check that food is cooked to the right Temperature.
- Eggs contain harmful bacteria which can be dangerous for pregnant women older people and babies don't serve egg with runny yolk or egg containing foods that would not be cooked eg-Homemade mayonnaise.

Even women are usually very careful about food Hygiene it is very easy to slip up on special occasions such, Picnic or parties. Here are some points how we can keep food safe.

- Don't leave party foods that normally need to be refrigerated at room temperature for hours, Serve individual portions and keep leftovers stored in the fridge.
- Keep all serving bowls cowered until the last minute.

- When preparing a Picnic take the food out of the Fridge at the last minute and use cool bag to keep it chilled and until covered you eat. Wash fruits and Salads before you cut them.
- Consider pre cooking poultry or Sausage in the oven.
- Prevent Cross contamination by using separate cool bags plates and utensil for raw and cooked meat.

Women should take care when eating out specially considers Hygiene. Women cannot usually inspect the Kitchens in restaurants cafes or pubs. There are certain warning signs of poor hygiene standards that you can look out for example-

- Dirty dining areas, toilets cutlery or crockery.
- Rubbish and over flowing bins outside these can attract vermin.
- Staff with dirty uniforms dirty fingernails or with long hair not tied back.
- Hair or insects in the food.
- Raw food and ready to eat food displayed together.
- Hot food that is not cooked through properly and cold food that is served lukewarm. For this one should concern about the hygiene standards of restaurants or take away out lets.

Conclusion:

If someone thinks that there are many cases of food poisoning than one should report the cases to environment health services of your local authority. This will help to ensure that other people do not suffer in the same ways. In recent years it has been seen that growing concern is reported in developing countries like India about the conditions in which food prepared to serve, food hygiene regulations place a heavy responsibility on every cater to maintain standard of food. Hygiene and Sanitation is continuous but essential process which need serious and constant consideration at all time.

REFERANCES

1. Food safety management- Yashmine motarjemi.
2. Food Hygiene and Sanitation By- S.Roday.
3. Chaterjee meera, Indian women their health and economic productivity world bank discussion proper 109 washington to D C (1990)
4. Shetty P.S. Food & nutrition. In detels R.J. Mc. Even R Beaglehole and H tanaka eds oxford textbook of public Health New york
5. Nandraj S. Beyond the Law and Lord Quality of Private health care economic and political weekly 29 (27) (1994).

Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 6, No. 12, Jan-June, 2020 ISSN : 2394-2878

जनपद प्रतापगढ़ में जनसंख्या घनत्व का एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. उदय प्रताप सिंह

अध्ययन क्षेत्र:– जनपद प्रतापगढ़ उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में $25^{0}34'$उत्तरी अक्षांश से $26^{0}11'$ उत्तरी अक्षांश तथा $81^{01}19'$ डिग्री पूर्वी देशांतर से 82^{0} 27′ पूर्वी देशांतर के मध्य विस्तृत है। इस जनपद का क्षेत्रफल 3,717 वर्ग किमी0 है। पूर्व से पश्चिम इसकी लंबाई 110 किमी0 एवं उत्तर से दक्षिण इसकी लम्बाई 50 किमी है। जिले के उत्तरी भाग़ में सई नदी प्रवाहित होती है अन्य नदियों में गंगा, लोनी, पीली, गोमती, बकुलाही, रखहा आते हैं। इसके अतिरिक्त यहां जल के अनेक कृत्रिम स्रोत हैं। इसके उत्तर दिशा में सुल्तानपुर पूर्व दिशा में जौनपुर दक्षिण दिशा में इलाहाबाद एवं पश्चिम दिशा में रायबरेली जनपद है। जनपद में 45.54 प्रतिशत लोग कृषि पर आश्रित हैं। जनपद में कुल 5 तहसील सदर, कुंडा, लालगंज, पट्टी, रानीगंज तथा कुल 17 विकास खंड–प्रतापगढ, सदर, साण्डवा, चंद्रिका, कुंडा, विहार, पटटी, आसपुर, देवसरा, मानधाता, लक्ष्मणपुर, लालगंज, बाबागंज, कालाकाकर, गौरा, षिवगढ़, सागीपुर, रामपुर, संग्रामगढ़, बाबा, बेलखरनाथ हैं।

उद्देश्य– प्रस्तुत शोधपत्र का प्रमुख उद्देश्य यह है कि जनपद प्रतापगढ़ के असमान जनसंख्या वितरण के कारणों का पता लगा सके। विभिन्न प्रकार के भौतिक एवं सांस्कृतिक कारण जनसंख्या के वितरण और घनत्व को अधिक से अधिक प्रभावित करते हैं। क्या कारण है कि जनपद के कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या निवास्य क्षेत्र पाए जाते हैं जबकि अनेक क्षेत्र विरल जनसंख्या के वितरण और सापेक्षिक रूप से कम जनसंख्या घनत्व को प्रदर्शित करते हैं?

विधि तंत्र– अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व की सम्यक व्याख्या करने के लिए शोधार्थी नें सर्वे आफ इंडिया देहरादून द्वारा प्रकाशित 1,50,000 भूपत्रक का सहारा लिया जिससे भू पत्रकीय विश्लेषण किया गया। जनसंख्या से संबंधित आंकड़े जनसंख्या निदेशक के कार्यालय लेखराज डालर लखनऊ से प्राप्त किए गए। जनसंख्या और भूपत्रकीय मानचित्रों का अध्यारोपण करने के उपरांत घनत्व की सम्यक में व्याख्या की गई है।

जनसंख्या घनत्व– किसी क्षेत्र के संसाधनों पर जनसंख्या के दबाव को स्पष्ट करने हेतु जिन प्रमुख माध्यमों का प्रयोग किया जाता है उनमें जनसंख्या घनत्व सर्वप्रमुख है। विकासशील देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में पहुंच चुके हैं रोजगार के अवसरों का पुनर्निर्माण किया जा रहा है इसलिए भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या वितरण और घनत्व का अध्ययन विशिष्ट महत्व रखता है। परंतु दुर्भाग्य है कि भारत जैसे विकासशील देश में जनसंख्या वितरण एवं घनत्व के अध्ययन की ओर विद्वानों ने यथोचित ध्यान नहीं दिया। आजादी से पहले गेडिस 1942 और अहमद 1941 तथा आजादी के बाद चटर्जी 1962 द्वारा संपूर्ण भारत की जनसंख्या वितरण का अध्ययन इस कथन के कुछ अपवाद हैं। कुछ प्रयास प्रादेशिक स्तर पर अवश्य हुए हैं जिनमें कुरियन 1938 वर्मा 1956 चटर्जी 1962 सिन्हा 1958 कृष्णन 1966 घोष 1970 प्रकाश 1970 और मेहता 1973 का नाम विशेष उल्लेखनीय है जिन्होंने कमस, केरल, पंजाब, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, उत्तर प्रदेश और राजस्थान राज्य की जनसंख्या वितरण का अध्ययन किया। गोलस और चांदना ने 1979–82 के मध्य

शोधों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हुए हाल के जनगणना आकार पर संपूर्ण देश के जनसंख्या वितरण का अध्ययन करने पर बल दिया। जनसंख्या घनत्व प्रति इकाई क्षेत्रफल पर निवास करने वाली जनसख्या का द्योतक होता है। किसी भी क्षेत्र में प्राकृतिक साधानो की एक सीमा होती है। जनसंख्या इन सभी संसाधनों के विदोहन के स्तर को निर्धारित करती है। इससे प्रति व्यक्ति साधन प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन स्तर का ज्ञान होता है अतः क्षेत्र विशेष की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नति का प्रारूप निर्धारित करने के लिए उस जनसख्या की सघनता का परिज्ञान अपेक्षित है। क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या और क्षेत्रफल के पारस्परिक अनुपात से जनसंख्या का घनत्व ज्ञान होता है।

जनसंख्या घनत्व के प्रकार :–ट्रिवार्था (1953) ने जनसंख्या भूगोल को एक अलग अध्ययन शाखा के रूप में स्थापित करने के लिए पुरजोर पक्ष प्रस्तुत करते हुए तीन तरह के जनसंख्या घनत्व की परिकल्पना का सुझाव दिया– गणितीय, पोषक एवं कृषि घनत्व। कुल जनसख्या और कुल क्षेत्रफल अनुपात को, जिसे प्रति इकाई क्षेत्र में रहने वालों की संख्या कहा जा सकता है गणितीय या सामान्य घनत्व पुकारा जाता है। क्लार्क (1972) का यह कहना उचित ही है कि इन त्रुटियों के बावजूद भी जनसंख्या घनत्व संकल्पना मनुष्य के क्षेत्रीय वितरण प्रारूप को स्पष्ट करने का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हथियार है। जनसंख्या घनत्व को यद्यपि कई रूपों में आंकलित किया जाता है परन्तु उनमें गणितीय घनत्व पूर्व प्रचलित विधा रही है। जनसख्या घनत्व के प्रकारों का अध्ययन क्षेत्र के लिए उपयुक्तता की दृष्टि से निम्नवत् रखा जा सकता है।

आंकिक या सामान्य घनत्वः–इस जनसंख्या घनत्व का महत्व सर्वाधिक है क्योकि इनकी गणना से सबंधित जनसंख्या एवं क्षेत्रफल के ऑकड़े आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इसकी गणना में क्षेत्र के सम्पूर्ण क्षेत्रफल से सम्पूर्ण जनसंख्या का अनुपात ज्ञात किया जाता है। अंकित जनसंख्या घनत्व को परिकलित करने का सूत्र निम्नलिखित है–

आंकिक घनत्व(गणितीय घनत्व) कुल जनसंख्या/कुल क्षेत्रफल वर्ग किमी में

आंकिक घनत्व के लिए सामान्यतया गणितीय घनत्व जनसंख्या घनत्व शब्द का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र जनपद प्रतापगढ़ मध्य गंगा मैदान के सघनतम बसे क्षेत्रों में से एक है। पिछले कुछ दशकों में अध्ययन क्षेत्र में जनसंख्या घनत्व में साधारण धनात्मक वृद्धि दिखाई देती है। 1991 में जनसंख्या घनत्व 595 तथा 2001 में यह बढ़कर 735 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी हो गई जो प्रदेश के औसत घनत्व 689 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी से अधिक है। 1991 की जनगणना के अनुसार जनपद में सर्वाधिक जनसंख्या घनत्व लालगंज विकास खंड 920 व्यक्ति/वर्ग किमी में था जबकि इस काल में न्यूनतम घनत्व सांगीपुर विकासखंड 511 व्यक्ति/वर्ग किमी में था जबकि 2001 में सर्वाधिक जनघनत्व का केंद्र शिवगढ़ 1035 व्यक्ति/वर्ग किमी है तथा मानधाता 122 व्यक्ति/वर्ग किमी विकासखंड दूसरे स्थान पर है जबकि जनपद में न्यूनतम घनत्व रामपुर संग्रामगढ़ 604 व्यक्ति/वर्ग किमी सांगीपुर 618 व्यक्ति/वर्ग किमी में दर्ज किया गया है (सारणी 1)।

2001 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या घनत्व 735 व्यक्ति/वर्ग किमी है जो 1991 (595) व्यक्ति/वर्ग किमी0 की अपेक्षा 140 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी बढ़ गया (सारणी 1)। 1991 में कालाकांकर 677 व्यक्ति वर्ग किमी बाबागंज 563 व्यक्ति वर्ग किमी कुंडा 605 व्यक्ति/वर्ग किमी0 बिहार 581 व्यक्ति/वर्ग किमी0, सांगीपुर 511 व्यक्ति /वर्ग किमी0, लालगंज 920 व्यक्ति/वर्ग किमी0, लक्ष्मणपुर 667 /वर्ग किमी0, सण्डवा चंद्रिका 533/वर्ग किमी0, प्रतापगढ़ सदर 715/वर्ग

किमी0, मानधाता 712 /वर्ग किमी0, मंगरौरा 540 /वर्ग किमी0, पट्टी 545 /वर्ग किमी0, आसपुर देवसरा 627 /वर्ग किमी0, शिवगढ़ 631 /वर्ग किमी0, गौरा 595 /वर्ग किमी0, विकासखंड है जहां 500 से 1000 तक जनसंख्या घनत्व पाया जाता है। 1991 में संपूर्ण विकास खंडों में से इसी श्रेणी की जनसंख्या घनत्व मिलती थी। 1000 से अधिक व्यक्ति प्रति वर्ग किमी जनसंख्या घनत्व में शिवगढ़ विकासखंड का है। 2001 में शेष सम्पूर्ण विकास खंड में 500 से 1000 के बीच जनघनत्व पाई जाती है (सारणी 1)।

कृषि घनत्व:– इस विधा द्वारा कृषि में संलग्न जनसंख्या का कुल कृषि के क्षेत्र से अनुपात किया जाता है जो कि कृषि प्रधान क्षेत्रों में जनसंख्या दबाव करने का सर्वोत्तम माध्यम एवं सूचकांक है। कृषक जनसंख्या और कुल कृषि भूमि के अनुपात को जनसंख्या का द्योतक होता है। शर्मा आर0 सी0 1975। कृषि जनसंख्या घनत्व नियम सूत्र की सहायता से निकाला गया है– कृषि जनसंख्या घनत्व कृषि में संलग्न जनसंख्या/कृषिगत क्षेत्रफल। 1991 की जनगणना के अनुसार अध्ययन क्षेत्र का कृषि घनत्व 240 तथा 2001 में 178 है। 1991 के अनुसार अधिकतम जनभार का कृषि क्षेत्र कलाकांकर 279 विकासखंड में रहा। इसके अतिरिक्त कुंडा 267 लालगंज 267 लक्ष्मणपुर 259 मांधाता 254 बाबागंज 251 विकासखंड में कृषि पर निर्भरता उच्च रही। 2001 में कलाकांकर 218 विकासखंड अधिकतम जन्म भार का कृषि क्षेत्र है। इसके अतिरिक्त शिवगढ़ 209 व कुंडा 202 विकासखंड में कृषि पर निर्भरता उच्च रही। 1991 में प्रतापगढ़ सदर 198 पट्टी 200 सण्डवा चंद्रिका 211 मगरौरा 213 तथा आसपुर देवसरा 220 विकासखंड न्यून जनभार तथा 2001 में प्रतापगढ़ सदर सण्डवा चंद्रिका आसपुर देवसरा बाबागंज बाबा बेलखरनाथ तथा सांगीपुर न्यून जनभार का क्षेत्र है। लालगंज लक्ष्मणपुर मानधाता मगरौरा पट्टी गौरा तथा बाबा बेलखरनाथ विकासखंड जनभार वाले कृषि क्षेत्र रहे हैं। (सारणी 1)

कायिक या शरीर क्रियात्मक घनत्व– इस घनत्व की गणना में भी कुल क्षेत्रफल के स्थान पर कुल कृषि गत भूमि के क्षेत्रफल को सम्मिलित किया जाता है तथा उससे संपूर्ण जनसंख्या को विभाजित कर कायिक या शरीर क्रियात्मक घनत्व ज्ञात किया जाता है। स्पष्ट है कि इस घनत्व के आकलन में कृषि भूमि को अनउत्पादन क्षेत्र समझकर सम्मिलित नहीं किया जाता है। कायिक घनत्व सकल जनसंख्या/ कुल कृषिगत भूमि आलोच्य क्षेत्र में 1991 में कायिक घनत्व 970 था जबकि 2001 में कायिक घनत्व 722 है। 1991 की जनगणना के अनुसार प्रतापगढ़ सदर 1143 तथा 2001 में कुंडा 1379 विकासखंड में उच्चतम कायिक घनत्व के क्षेत्र हैं। 1991 में मानधाता 1102 कुण्डा 1084 लक्ष्मणपुर 1079 तथा शिवगढ़ 1019 विकासखंड तथा 2001 में शिवगढ़ 1354 लक्ष्मणपुर 1321 प्रतापगढ़ सदर 1268 विहार 1256 मानधाता 1198 बाबा बेलखरनाथ 1170 बाबागंज 1173 कालाकांकर 1139 तथा लालगंज 1118 अन्य उच्चतम कसयिक घनत्व के क्षेत्र हैं। 1991 की जनगणना के अनुसार सांगीपुर 821 पटटी 855 और मगरौरा 870 तथा 2001 में सण्डवा चन्द्रिका 896 सांगीपुर और मगरौरा 959 विकासखंड में न्यूनतम कायिक घनत्व के क्षेत्र हैं (सारणी 1)।

पोषण घनत्व– पोषण घनत्व कायिक घनत्व का ही परिष्करण जिसमें कुल जनसंख्या एवं खाद्यान्न फसलों के संबंद्ध क्षेत्रफल का अनुपात प्रदर्शित किया जाता है। यह घनत्व इस मनतव्य पर आधारित है कि मानव के लिए जीवनदायिनी शक्ति हेतु खाद्यान्न फसलें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है जिसके कारण कुछ विद्वान पोषण घनत्व की भी संज्ञा देते हैं। स्पष्ट है कि यह घनत्व खाद्यान्न फसलों पर क्षेत्र विशेष की आत्मनिर्भरता अथवा आयात की बाध्यता को स्पष्ट करता है। पंडा बी0पी0 1988।

पोषण घनत्व क्षेत्र कुल जनसंख्या/खाद्यान्न फसलों के अंतर्गत क्षेत्रफल

आलोच्य क्षेत्र का पोषण घनत्व 615 (1991 में) तथा 713(2001) है। विभिन्न विकास खंडों में 1991 में प्रतापगढ़ सदर 885 तथा 2001 में शिवगढ़ 1080 विकास खंडों में उच्चतम पोषण घनत्व के क्षेत्र है। 1991 में शिवगढ़, मानधाता, लक्ष्मणपुर, कुण्डा, सण्डवा चन्द्रिका, गौरा तथा कालाकांकर तथा 2001 में प्रतापगढ़ सदर लक्ष्मणपुर बाबा बेलखरनाथ कुण्डा सण्डवा चन्द्रिका मांधाता तथा आसपुर देवसरा विकासखंड पोषण घनत्व के उच्चतम क्षेत्र है। 1991 की जनगणना में पट्टी 519 बाबागंज 560 व सांगीपुर 569, 2001 में रामपुर संग्रामगढ़ 559 पट्टी 606 व कलाकांकर 643 विकासखंड न्यून स्तर के क्षेत्र हैं। (सारणी 1)

सारणी संख्या – 1 जनपद प्रतापगढ़ : जनसंख्या घनत्व

क्रम	विकासखण्ड	कायिक घनत्व		कृषि घनत्व		पोषण घनत्व		गणितीय घनत्व	
		1991	2001	1991	2001	1991	2001	1991	2001
1	कालाकांकर	994	1139	279	218	603	643	977	708
2	बाबागंज	891	1173	251	159	560	649	563	638
3	कुण्डा	1084	1379	267	202	672	869	605	756
4	विहार	959	1256	247	195	575	734	581	717
5	सांगीपुर	821	913	247	168	569	675	511	618
6	लालगंज	926	1118	267	189	567	687	920	644
7	लक्ष्मणपुर	1074	1321	259	189	692	911	667	732
8	सण्डवाचन्द्रिका	886	896	211	135	658	863	533	679
9	प्रतापगढ़ (सदर)	1143	1268	198	131	885	1074	715	876
10	मानधाता	1102	1198	254	176	699	863	712	922
11	मंगरौरा	870	959	213	185	589	654	540	662
12	पट्टी	855	984	200	192	519	606	545	700
13	आसपुर देवसरा	943	1033	220	155	609	723	627	769
14	शिवगढ़	1019	1354	245	209	700	1080	631	1035

15	गौरा	974	886	235	179	649	628	595	624
16	रामपुर संग्रामगढ़		975		183		559		604
17	बाबा बेलखरनाथ		1170		161		901		740
	जनपद	970	772	240	178	617	713	595	735

स्रोत सांख्यिकीय पत्रिका जनपद–प्रतापगढ़।

REFRENCES

1- Lal, H. (1981) : Population Potantial and Spatial Distribution of Population in Estern UP NGIL 25,2 PP. 112-117

2- Trewartha, G.T. (1969): A geography of population world Patterns, John wiley and sons, Newyark.

3. पण्डा, बी0 : जनसंख्या भूगोल,मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल।

4. मौर्या, ए डी0: जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

5- Clarke John I (1992): Population geography Pergamon press, Oxford, P.31.

6- Chandra R.C. (2003) Introduction to population Geography, Kalyani Publishers New Delhi.

7- Chatterjee, S.P. (1961) "Physical Feature and Population distribution in West Bangal." Calcutta Geographical Review. P.23.

8- Chatterjee, S.P. (1962) "Regional Pattern of denesty and Distribution in India." Geographical review of India, 24, 1-28.

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

डॉ0 बच्चा प्रसाद
प्रवक्ता, राजनीति विज्ञान विभाग
एस0 बी0 एम0 पी0 जी0कालेज
पावानगर फाजिलनगर, कुशीनगर

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एक वहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। इन्होंनें मानवीय जीवन से सम्बन्धित सभी पक्षो पर गंभीरता के साथ सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप में विश्लेषण किया। तत्कालीन समय में भारतीय समाज में व्याप्त बुराईयों यथा,सामाजिक भेद–भाव, जाति–पाति, छुआ–छूत, नारियों की दुर्दशा, आर्थिक विषमता, राजनीतिक असमानता के साथ अनेक बुराईयों पर कड़ा प्रहार करते हुए, इन बुराईयों के समाधान हेतु महत्वपूर्ण सुझाव भी दिये। इन सुझाओं में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया।

डॉ0 अम्बेडकर के पूर्व महाराष्ट् में महान समाज सुधारक ज्योति बा फूले ने 1873ई0 में सत्यशोधक समाज की स्थापना कर जातीय भेद–भाव एवं उचीं जातियों के प्रभुत्व को खुली चुनौती दी तथा अनेक विरोधों एवं निंदा के बावजूद इन्होंनें अपनी पत्नी सावित्री बाई के नेतृत्व में पूना में अछूत वालिकाओं के लिए प्रथम स्कूल की स्थापना कराई। ज्योतिबा फुले को पक्का विश्वास था कि शिक्षा सभी प्रगति एवं समृद्धि की कुंजी है। उन्होंनें दलित समाज में निम्न महामंत्र फूंका–

''ज्ञान के अभाव में बुद्धि का ह्रास हुआ
बुद्धि के अभाव में नैतिकता गई
नीति के अभाव में प्रगति गई
प्रगति के अभाव में सम्पति गई
सम्पत्ति के अभाव में शूद्र बर्बाद हो गये''
अर्थात् केवल ज्ञान के अभाव में इतना अनर्थ हो गया।[1]

डॉ0 अम्बेडकर नें ज्योतिबा फूले को अपना पथ– प्रदर्शक मानते हुए दलित समाज को शिक्षित करनें में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ0 अम्बेडकर ने दलित समुदाय को तीन सूत्र दिए– पढ़ो, संगठित हो जाओ और संघर्ष करो। अर्थात् संगठित और न्याययुक्त संघर्ष हेतु प्रथम शर्त शिक्षित होने की है।[2] शिक्षा से ही भौतिक जगत में गतिशीलता की क्षमता के साथ बौद्धिकता का विकास होता है। डॉ0 अम्बेडकर शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि शिक्षा दुधारी शस्त्र है। जिससे उसका प्रयोग जोखिम से भरा होता है। चरित्रहीन एवं विनयहीन शिक्षित व्यक्ति पशु से भी खतरनाक होता है।[3] यदि सुशिक्षित व्यक्ति की शिक्षा लोक कल्याण पर आधारित नही होगी तो वह व्यक्ति समाज पर अभिशाप होगा। वास्तव में शिक्षा से अधिक महत्व चरित्र का है।

डॉ0 अम्बेडकर तत्कालीन समाज में शिक्षित युवकों द्वारा धर्म का उपहास किये जाने से अत्यन्त दुखी थे। उनके अनुसार मेरे अन्दर जो अच्छे गुण उपस्थित है एवं मेरी शिक्षा से समाज का जो कुछ भला हुआ है वास्तव में वह मेरे अन्तर्मन की धार्मिक भावना के कारण ही हुआ है। वस्तुतः हमे धर्म चाहिए परन्तु धर्म के नाम पर चलने वाला पाखण्ड नही चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य लोकहितकारी होनी चाहिए। शिक्षा से प्राप्त योग्यता का उपयोग वचिंत समाज के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए न कि उसके शोषण के लिए । शिक्षा का उद्देश्य ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' पर आधारित होना चाहिए। डॉ0 अम्बेडकर ने स्वयं भी अपनी शिक्षा का उपयोग अपनी भौतिक सुख–सुविधा की उन्नति के लिए नही बल्कि वंचित समाज के उत्थान के लिये किया।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा को अपने जीवन दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान देने के साथ ही शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक की महत्ता को रेखांकित किया है। क्योंकि शिक्षा केवल किताबों से ही नही मिलती है। बल्कि शिक्षक के आचरण व व्यवहार से मिलती है।शिक्षा से संस्कार बनती है। और संस्कार शिक्षक के आचरण से बनती है, इसी कारण से डॉ0 अम्बेडकर शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक की भूमिका और चयन को लेकर अत्यंत ही सतर्क रहत थे। डॉ0 अम्बेडकर शिक्षा और शिक्षक के मामले में जातिगत भेद–भाव और पूर्वाग्रह से सदैव दूर रहे, इसी क्रम मे जब मिलिंद महाविद्यालय के आचार्य द्वारा उनसे प्रश्न करने पर कि वे इतने ब्राहमण विरोधी क्यों है? तो अम्बेडकर का उत्तर अत्यन्त ही मार्मिक था मेरे मित्र यदि मै ब्राहमण विरोधी होता तो तुम इस महाविद्यालय में शिक्षक नही होते। मेरे इस संस्था में अधिकांश शिक्षक ब्राहमण ही है, मेरा विरोध ब्राहमणों से नही बल्कि ब्राहमणबाद से है।

समाजिक परिवर्तन एक जटिल और श्रमसाध्य प्रक्रिया है। परन्तु शिक्षक एक ऐसा महत्वपूर्ण माध्यम है, जिससे प्रत्येक समस्या पर विजय प्राप्त की जा सकती है। इस तथ्य से भिज्ञ होते हुए सर्वसाधारण को शिक्षा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इसके लिये उन्होंनें 1945 ई0 में पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी की स्थापना किया । इस संस्था के वे आजीवन अध्यक्ष रहे। इस संस्था के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंनें कहा था कि सोसायटी का उद्देश्य केवल छात्रों को शिक्षित करना ही नही है, बल्कि समाज एवं देश के लिये ऐसे चरित्र पैदा करना है जो सामाजिक लोकतंत्र को मजबूत करे।[4]

डॉ0 अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय के लक्ष्य को सार्थक हथियार बनाया और कहा कि जिसकी बुद्धि एवं विवेक गुलाम है वह कभी भी स्वतंत्र नही हो सकता। बलों में सर्वश्रेष्ठ बल शिक्षा ही है। डॉ0 अम्बेडकर ने इस संस्था के अंतर्गत स्कूल, छात्रावास के साथ अनेक संस्थाओं को स्थापित किया। जिसका मुख्य उद्देश्य दलित और शोषित के बच्चों को इन सोसायटी के स्कूलों मे अध्ययन का अवसर उपलब्ध कराना, क्योंकि तत्कालीन समय में दलित के बच्चों को स्कूलों में आसानी से प्रवेश नही मिलता था । इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने उस उद्देश्य से सस्थाओं को खोला कि इसमें दलित छात्रों को आसानी से प्रवेश मिलने के साथ वे अध्ययन करके अपना भविष्य बना सकें। इस संस्था ने शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया है। वर्तमान समय में भी यह संस्था देश में सफलतापूवर्क कार्य कर रही है। इसके अन्तर्गत बम्बई, औरंगाबाद, पूना, मंग्लौर, महाद, रायगढ़, पन्दारपुर 'शोलापुर' में विविध प्रकार की 28 शैक्षिक संस्थाए वर्तमान में चल रहीं है। जिसमें बम्बई के प्रसिद्व सिद्धार्थ कालेज और औरंगाबाद के विख्यात मिलिंद कालेज 'वर्तमान में मराठाबाद भीमराव अम्बेडकर यूनिवर्सिटी' प्रसिद्ध हैं। इन कालेजां में हजारों की संख्या में अनुसूचित जाति/जनजाति और पिछड़ी जाति के छात्र अध्ययन कर रहें है।

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का मानना था कि सैद्धांतिक शिक्षा के साथ– साथ व्यवसायिक व तकनीकी शिक्षा भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि उनका कहना था कि शिक्षा ऐसी हो जिसे ग्रहण करके

छात्र अपने पैरों पर खड़ा हो सके। इस दृष्टि से अनुसूचित जाति के छात्रों को और भी आवश्यकता है। क्योंकि ये आर्थिक दृष्टि से कमजोर एवं गरीब होते है।[5] अतः शिक्षा प्राप्त करके स्वयं को आत्मनिर्भर बनना अति आवश्यक है। उन्होंनें संविधान के माध्यम से देश में दस वर्ष के अन्दर पूरे देश के लिये अनिवार्य शिक्षा लागू किये जाने का प्रावधान कराया। डॉ0 अम्बेडकर महान समाज सुधारक के साथ शिक्षाशस्त्री भी थे। उनका कहना था कि, ''सर्वप्रथम शिक्षित हो तदुपरान्त संगठित होकर अपने लक्ष्यों की प्रप्ति हेतु संघर्ष करो।'' क्योंकि बिना शिक्षा के ठीक ढंग से न तो कोई संगठन बन सकता है और न ही अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने 1946ई0 में बम्बई मे सिद्धार्थ कालेज का उद्घाटन किया, जिसने बम्बई में शिक्षा के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सारांश रूप में डॉ0 भीमराव अम्बेडर शिक्षा को वंचित समाज के कल्याण और प्रगति का धारदार और कारगर हथियार मानते हैं। लेकिन शिक्षा को वे पृथक रूप में परिभषित न करके उसे समग्र रूप ग्रहण करते है। यही कारण है कि वर्तमान समय में डॉ0 अम्बेडकर के विचारों को भारत में ही नही बल्कि विदेशों में भी मान्यता प्रदान करके उन्हें आत्मसात किया जा रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. डॉ0 सूर्य नारायण रणसुभे, डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर, पुस्तक के अध्याय डॉ0 अम्बेडकर पूर्व महाराष्ट् के पृष्ठ संख्या 24 से उदधृत। राधाकृष्ण प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली 2009
2. डॉ0 कुलदीप चन्द अग्निहोत्री की प्रकाशित लेख '' डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ओर उनके शिक्षा सम्बन्धी
3. विचार'' दैनिक जनसत्ता 2014 पृष्ठ संख्या 2
4. प्रभकर दीघे, महामानव डॉ0 बाबा साहेब अम्बेडकर'' पृष्ठ संख्या 144 से उदधृत
5. आर0 डी0 सोनकर, क्रान्तिकारी महापुरूष डॉ0 भीमराव रामजी राव अम्बेडकर, दिसम्बर 2010 के मासिक पत्रिका अम्बेडकर इन इण्डिया के पृष्ठ संख्या 19 से उद्धृत

व्यापारिक एवं नगरीय विकास में मध्य गंगा घाटी का योगदान

डा0 नीरज बाजपेयी
प्राचार्य
रामकृष्ण परमहंस पी०जी० कालेज
कैसरगंज, बहराइच

सारांश

प्राचीन भारतीय धर्म में गंगा नदी की अपनी महत्ता है। नदियों से ही व्यापारिक एवं नगरीय जीवन की योजना को काफी बल मिलता है। गंगा घाटी के अंतर्गत जब हम चर्चा करते हैं तो ऊपरी गंगा घाटी एवं मध्य गंगा घाटी का परिक्षेत्र सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं व्यापारिक दृष्टि से काफी महत्व रखता है। प्रस्तुत लेख की सार्थकता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि गंगा घाटी के परिक्षेत्र में रहने वाले तथा उसकी संस्कृति में जीने वालों का अलग सामाजिक स्तर एवं दृष्टिकोण दिखाई देता है। समय–समय पर किए गए उत्खननो से नई चीजें प्रकाश में आई जिसके कारण मध्य गंगा घाटी का व्यापारिक एवं नगरीय जीवन काफी पुष्पित एवं पल्लवित रहा । यही कारण है कि मध्य गंगा घाटी अपने में प्राच्य संस्कृति की आभा से अनुप्राणित होकर समाज के आर्थिक एवं नगरीय उन्नयन में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रही है जो अपने आप में संस्कृति के संरक्षण को प्रमाणित करती है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में गंगा नदी का अपना महत्व है,जिसके कारण इस भूभाग के निकट रहने वालों के आर्थिक एवं नगरीय जीवन में परिवर्तन की लहर दिखाई पड़ती है। इस परिवर्तन के कारण ही मानव जीवन उस मोड़ पर आकर खड़ा हो गया जिसे हम सभी द्वितीय नगरीकरण के नाम से जानते हैं। अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हुई। यह समस्त परिवर्तन गंगा घाटी के आसपास ही घूमता रहा। गंगा नदी से सिंचित एवं प्रभावित भूभाग को ही गंगा घाटी के नाम से जाना जाता है। इस गंगा घाटी को व्यवस्था से जोड़ने के कारण दो भागों में विभक्त किया गया है।

१) ऊपरी गंगा घाटी
२) मध्य गंगा घाटी[1]

परिक्षेत्र –ऊपरी गंगा घाटी एवं मध्य गंगा घाटी

ऊपरी घाटी के अंतर्गत हिमालय की तराई तथा भारत नेपाल का सीमावर्ती क्षेत्र आता है तथा बंगाल को छोड़कर जो बचता है उसे मध्य गंगा घाटी के नाम से जाना जाता है। मध्य गंगा घाटी की मुख्य नदी गंगा है जो उत्तर से दक्षिण पूरब दिशा की ओर प्रवाहित होती है। प्राचीन गंगा के साथ–साथ उसकी अनेको सहायक नदियां भी आती जिसमें घाघरा ,गंडक, कोसी, यमुना सोन सइ, वरुण, गोमती प्रमुख है। मध्य गंगा घाटी में पुरातात्विक अन्वेषण काफी हुए जिसमें प्रयागराज स्थित इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी प्रमुख है। जिन तीन पूरा स्थलों का उत्खनन किया गया उनमें सराय नाहर राय[2] महदहा[3] एवं दमदमा प्रमुख है। इसके साथ ही साथ सोहगौरा[4], चिराग[5], वायना[6] ,भूनाडीह[7] ,इमलीडीह और लहुरादेवा[8], हेतापट्टी[9] इत्यादि प्राचीन स्थलों से भी उत्खनन में नवपाषाण कालीन संस्कृति के प्रमाण मिले हैं।

प्राचीन ऐतिहासिक काल में मध्य गंगा घाटी में लोहे का प्रयोग कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण रहा यही कारण है कि तत्कालीन मानव समाज ने लोहे के प्रयोग को अपनी जीवन पति का मूल अंग मान लिया। लोहे के प्रयोग से वनों की कटान के साथ–साथ कृषि क्षेत्र को भूभाग बनाना तथा कृषि यंत्रों का उपकरण बनाना प्रमुख था। लौह खनिज के रूप में तत्कालीन छोटा नागपुर का पठारी भाग प्रसि था और तत्कालीन परिस्थिति में लौह यंत्रों का उपयोग समय की आवश्यकता थी। पठारी क्षेत्र से लौह खनिज को एकत्र करके तथा पिघलाकर अपनी उपयोगिता कें अनुरूप लौह यंत्रों का निर्माण हुआ।[10]

मध्य गंगा घाटी का नगरीय विकास

जहां तक मध्य गंगा घाटी का नगरीय विकास में योगदान का प्रश्न है इस संबंध में पहले नगरीकरण का ज्ञान हमें हड़प्पा की संस्कृति से प्राप्त होता है। इस संस्कृति के पतन के पश्चात संस्कृतियों का विकास पूरब दिशा में बढ़ता हुआ दिखाई पड़ता है। व्यास नदी के पूर्व जिन घने जंगलों को काट कर जिस संस्कृति का विकास दिखाया गया उसकी पृष्ठभूमि में मध्य गंगा घाटी में भी विभिन्न संस्कृ तियों का विकास हुआ। ऊपरी गंगा घाटी में कृष्ण लोहित मृदभांड संस्कृति, गैरिक मृदभांड संस्कृति की छाप दिखाई पड़ती है। मध्य गंगा घाटी में संयोग से गैरिक मृदभांड संस्कृति कहीं भी नहीं दिखाई पड़ती है। विशेषकर मध्य गंगा घाटी में नगरीकरण के विकास में जो प्रमुख कारक है उनका उल्लेख किया जाना नितांत समीचीन होगा । गंगा घाटी के क्षेत्र में जो पुरातात्विक स्थल महत्वपूर्ण है उनमें मांझी[11], भीटा[12], राजघाट[13] प्रमुख है। इन स्थलों की खोज में जो साक्ष्य प्राप्त हुये उनसे नगरीकरण के विभिन्न पक्षों पर सम्यक प्रकाश पड़ता है जिसमें लोहा प्रमुख है जिससे खेती एवं घर दोनों के कार्य हो जाते हैं।

लौह की उपयोगिता का महत्व

कृषि एवं गृह कार्य में लोहे की उपयोगिता ने अर्थव्यवस्था की त्वरित गति को प्रभावित किया जिसका परिणाम हुआ कि मानव जीवन में परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। उत्पादन की क्षमता में वृद्धि के कारण वाणिज्य एवं व्यापार को प्रोत्साहन मिला । तत्कालीन विभिन्न वस्तुओं के क्रय एवं विक्रय की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। सिक्के के माध्यम से विनिमय प्रणाली विकसित हुई जिसका परिणाम हुआ कि नगरीकरण अपनी विभिन्न संरचनाओं से प्रतिष्ठित हुआ। कच्ची एवं पक्की ईंटों का निर्माण भी शुरू हुआ। अगर यह कहा जाये कि उक्त प्रगति से एक व्यवस्थित वास्तु एवं स्थापत्य का विकास हुआ तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । इस समय भावनाओं के एवं नगरों के निर्माण की जो योजना बनाई गई वह काफी अच्छी एवं उचित थी जिसके कारण कौशांबी, झूसी, भीटा, राजघाट, प्रहलादपुर[14] इत्यादि स्थल प्रकाश में आए।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में लौह तकनीकी विकास ने मानव को एक उचित मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया। तत समय में घने जंगलों से घिरे मध्य गंगा घाटी के तटवर्ती क्षेत्रों को रहने योग्य तथा कृषि योग्य बनाने में लोहे की उपयोगिता निर्णायक रही। लोहे के अधिक प्रयोग से हथोड़ा, कुल्हाड़ी, छीनी इत्यादि औजारों का उत्खनन से प्राप्त होना अतिरिक्त उत्पादन एवं आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करता है। तत्कालीन सुत्तनिपात में लोहे को दिनभर जलाकर पुनः पानी डालने पर एक प्रकार की आवाज का वर्णन किया गया है। पाणिनी ने हल,फाल व जुताई का उल्लेख किया है। इसी समय सामाजिक एवं आर्थिक संरचनाएं मूर्त रूप ले रही थी जिसकी वजह से समाज में परिवर्तन पैदा हुआ । उत्खनन में प्राप्त उपकरणों से इस बात का स्पष्ट अंदाजा लगाया जा सकता है कि मध्य गंगा

घाटी का बाहरी व्यापार काफी मजबूत था। इस घाटी में विकसित होने वाले नगरों में श्रावस्ती, राजगृह, वैशाली, वाराणसी, कौशांबी तथा कुशीनगर, पाटलिपुत्र तत्कालीन व्यापार एवं वाणिज्य के प्रमुख केंद्र थे। उस समय विभिन्न प्रकार के नगर व्यवसायियों का उल्लेख प्राप्त होता जिसमें मालाकार, चित्रकार, रजक, गाधिका, रथकार प्रमुख है।[15] यह इस बात का प्रतीक की तत्कालीन समाज में संपन्नता बढ़ी तथा जीवन व्यवस्थित हुआ। सामाजिक रुप से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय में निपुण होने लगा।

नगरीय जीवन के विकास में छोटे छोटे उद्योगों की महत्ता

समाज में नगरीय जीवन के विकास की रूपरेखा में पशुपालन, कृषि तथा छोटे बड़े उद्योगों की महती भूमिका होती है। ग्रामीण अंचल में अधिकांश जनसंख्या इन्हीं छोटे उद्योगों पर आश्रित होती है। इनकी अतिरिक्त आय से शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जो महाजनपदों एवं नगरों की सूची है उसकी जानकारी बौद्ध ग्रंथ अग्गतुरनिकाय तथा जैन ग्रंथ भगवती सूत्र से प्राप्त होती है। राजगृह, वाराणसी, साकेत, श्रावस्ती आदि बुद्धकालीन प्रमुख नगरों का उल्लेख दीर्घनिकाय से प्राप्त होता है। कौशांबी विशिष्ट रक्षा प्राचीर से सुरक्षित बौद्वनगर था। इसमें संदेह नहीं कि कौशांबी शहर कला एवं व्यापार का प्रमुख गढ़ था इसके साथ ही साथ श्रावस्ती अयोध्या वाराणसी एवं चंपा भी उद्योग व्यापार के लिए प्रसिद्ध थे।

मध्य गंगा घाटी में कला की उपयोगिता

गंगा घाटी में जो विकास दिखाई पड़ता है वह केवल स्थापत्य के क्षेत्र में ही नहीं अपितु कला के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भूमिका को प्रमाणित करता है। इस अवधि में कलाकारों ने अपनी प्रतिभा का प्रयोग विशाल पत्थरों पर किया जिसका परिणाम रहा कि कौशांबी जैसे क्षेत्र कला के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए। तत्कालीन शिल्पकार सभ्य समाज के रूप में जाने जाते थे जो तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों को प्रमाणित करता है। मध्य गंगा घाटी की भौगोलिक पृष्ठभूमि ने आर्थिक एवं नगरीकरण को काफी प्रोत्साहित किया जिस पर मुद्रा के विकास की भूमिका है।[16] तत्कालीन शासकों ने जिनमे कौशांबी, कौशल, मथुरा, काशी प्रमुख है, ने अपने कार्यकाल में मुद्रा जारी की जिनमें रजत मुद्राएं कम संख्या में प्राप्त होती है।[17] इस काल में व्यापार किस चरम सीमा पर था इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उस समय व्यापारियों का एक संगठन काम करता था जिसे श्रेणी संगठन की परिभाषा से अभिहित किया गया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मध्य गंगा घाटी में तत्कालीन लौह प्रयोग के परिणाम स्वरूप व्यापार एवं कृषि क्षेत्र को बढ़ावा मिला, नगरीय विकास हुआ तथा तत्कालीन मानव समाज ने इन उपकरणों के माध्यम से व्यापार, वाणिज्य, कृषि, शिल्प सहित अन्य क्षेत्रों का सम्यक विकास किया जिसकी वजह से मध्य गंगा घाटी के अंतर्गत रहने वाले क्षेत्रों का काफी विकास हुआ। इस प्रकार प्राचीन व्यापारिक एवं नगरीय विकास में मध्य गंगा घाटी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता और यही कारण है की मौद्रिक अर्थव्यवस्था, आंतरिक एवं वाह्य व्यापार तथा नगरीय सभ्यता में अभूतपूर्व विकास हेतु मध्य गंगा घाटी की उपादेयता एवं सार्थकता परिलक्षित होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. R L Singh 1975, A regional Geography , National Geographical Society of India, Varanasi, Page 190-192
2. G R Sharma 1975, Seasonal Migrations and Mesolithic cultures of the Ganga Valley , K C Chattopadhyay Memorial volume ,Page 1-20
3. J N Pal 1988, The antecedents of village and folk cultures in the Gangetic Plane, rural law and folk cultures in ancient India, page 117-127
4. S N Chaturvedi ,1985, advance of vindhyan Neolithic and chalcolithic cultures to the Himalayan Tarai- Excavations and Explorations in Saryupar Region of UP, Man and Environment Volume-pug, Page 101-108
5. V S Verma, 1969 Black and red ware in Bihar, Potteries in ancient India, Sampadak- B P Sinha page 201-211
6. P Singh, A K Singh,1995-96, Trail excavations at Vaina district Baliya UP, Pragdhara ank 6 Page 41-62
7. P Singh, A K Singh,1997-98, Trail excavations at Bhoonadeeh district Baliya UP, Pragdhara ank 8 Page 11-30
8. 2001:2002 Wider archeological Implications Pragdhara ank 13 page 37-72
9. Journal of Interdisciplinary studies in History and Archeology Volume 2, Sampadak G K rai, Dept. of Ancient History culture and Archeology, University of Allahabad, page 325-330
10. Excavations at raja nal ka teela 1996-97, District Sonbhadra UP, preliminary Observations, Pragdhara ank 8 page 99-105 R Tiwari and others, Excavations at Malhar District chandauli UP, preliminary Report pragdhara ank 10 page 69-98, R Tiwari and Others 2002, Dadupur Excavations 1999-2000 District Lucknow UP, preliminary Report pragdhara ank 12 Page 99-116
11. T N Rai, 1986 Excavations at Manjhi 1983-85, A preliminary report Puratatva No 16 page 29-32
12. J H Marshell,1915 Excavations at Bheeta , Archeological Survey of India, Annual Report 1911-12 Calcutta page 24-94
13. A K Narayan and P Singh,1977 Excavations at Rajghat part 2 BHU Varanasi
14. A K Narayan and T N Rai 1968 Excavation at prahladpur, March-April 1963 BHU Varansi
15. Milindpanho page 324
16. P L Gupta , Bharat k poornakalik sikke page 38
17. Anoop Kumar,2013 , Prachin Bharat Ka Mudra Shastra ka Itihaas, Page 55

नई कविता में चित्रित स्त्री–पुरूष सम्बन्ध

डॉ0 कंचन त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
ए0पी0एन0पी0जी0
कालेज, बस्ती

सामान्यतः छायावाद की सुकुमार संगीतमय शब्दावली युग जीवन की जटिलता एंव ऊहापोहों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो चुकी थी। अतः रचनाकारों को अभिव्यक्ति के अन्य प्रकार खोजने की आवश्यकता महसूस हुई। तमाम विसंगातियों, विडंबनाओं का बड़ी गंभीरता, दायित्वपूर्ण एंव बरीकी से निराकरण करने के संकल्प को लेकर नई कविता हिन्दी काव्य क्षेत्र में उपस्थित हुई। प्रत्येक काव्यधारा परिस्थिति प्रसूत होती है। हमेशा युग चेतना के साथ–साथ व्यक्ति की चिंतन प्रकिया भी बदलती रहती है। बदले हुये चितंन को स्वरूप देने के लिये नवीन माध्यम की आवश्यकता महसूस होती है इस दिशा में हिन्दी काव्यधारा की अपनी विराट चेतना है जिसका उत्कर्ष है नई कविता। नई कविता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकसति होने वाली एक ऊर्जावान काव्यधारा है जिसमें स्वातंन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन और व्यक्ति की संश्लिष्ट जीवन परिस्थितियों का रचनात्मक साक्षात्कार किया हैं।

धर्मवीर भारती ने ''इसे पुराने और नये मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता माना है।'' मुक्तिबोध के अनुसार ''नयी कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुये मानव हदय के पर्सनल सिचुएशन की कविता हैं।''

नई कविता रचनाकार एवं समाज के नये संबंधों को धारण करने वाली है। इसलिये नयी कविता में परंपरागत कविता से आगे नये भाव बोध की अभिव्यक्ति के साथ नये षिल्प विधानों का भी अन्वेषण किया गया हैं।

इस युग में जीवन के विभिन्न संदर्भो में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए परिणामस्वरूप स्त्री एवं पुरूष के बीच के सम्बंधों में भी एक विशेष प्रकार के परिवर्तन हुए। धर्म एवं विश्वास के नाम पर केवल अनुभूति एवं कोमल कल्पनाओं के रूप में नारी को देखने की दृष्टि में परिवर्तन हुआ। भारतीय समाज व्यवस्था, विशेषतः शिक्षित मध्यवर्गीय परिवार में आज नारी की वही स्थिति नहीं है जो स्वतंत्रता से पहले थी। शिक्षा के प्रचार–प्रसार के परिणामस्परूप नारी की स्थिति में भी बदलाव आया। आज नारी की पहुॅच जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है। सती, सावित्री के बनाये गये मानदण्ड–आदर्श, नैतिकता, धर्म, विश्वास आदि जो केवल उसी के लिये थे, पुरूष के लिये नहीं, अब उसके लिये कोई विशेष अर्थ नहीं रखते। इन सब स्थितियों ने स्त्री–पुरूष सम्बंधो को इतनी नयी स्थितियों में रख दिया जो पहले कभी भी नहीं थे। इन नयी जीवन परिस्थितियों के परिणामस्वरूप स्त्री–पुरूष के बीच नये जीवन सम्बंध विकसित हुये, जैसे–पति–पत्नी, प्रेमी–प्रेमिका, स्त्री– पुरूष, मित्र आदि रूप। नयी कविता में स्त्री–पुरूष के जिन नये सम्बंधों को स्वीकृति मिली उसमें प्रमुख स्त्री–पुरूष का प्रेमी–प्रेमिका रूप है।

नयी कविता के प्रमुख कवि अज्ञेय रूत्री–पुरूष सम्बंध को ''चिरन्तन नारी एवं चिरन्तन पुरूष'' का सम्बंध मानते हैं। स्त्री–पुरूष सम्बंधों पर प्रकाष डालते हुए अज्ञेय ने ''चिन्ता'' की भूमिका में लिखा है।

''पुरूष और स्त्री का सम्बंध पति–पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरूष और चिरन्तन नारी का सम्बंध–अनिवार्यतः एक गतिशील सम्बंध है––––नाटकीय भाषा में उसे हम पुरूष और स्त्री का चिरन्तन संघर्ष कह सकते हैं। यही मूल संघर्ष चिन्ता का विषय है।''1

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर संग्रह को दो खण्डों में विभक्त किया गया है– 'विश्वप्रिया 'और 'एकायन'।

विश्वप्रिया– इस खण्ड में पुरूष के प्रेम का चित्रण किया गया है। वास्तव में 'विश्वप्रिया ' मानव मन की उस पिपासा का प्रतीक है जो अभी तक सन्तुष्ट नहीं हो सकी है। यही वजह है कि पुरूष सदैव नारी मिलन के लिये आकुल रहता है। कभी–कभी तो पुरूष उद्दाम काम वासना के वशीभूत होकर नारी को ललकारता हैं–

''तोड़ दूंगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान,
तुम हंसों कह दो कि अब उत्सर्ग वर्जित है,
छोड़ दूँ कैसे भला मैं जों अभीसिप्त है,
कोषवत सिमटी रहे यह चाहती नारी,
खोल देने, लूटने का पुरूष अधिकारी।। 2

इसके अलावा पुरूष मन के पराजय, विषाद और विरक्ति के भाव का यथार्थ एंव मार्मिक निरूपण किया गया है।

एकायन–

इसमें कवि ने नारी की प्रणयानुभूति का तथा उसकी विरह–व्यथा का मार्मिक चित्रण किया गया है। 'एकायन ' का अर्थ ही है एक मार्ग– नारी का पुरूष के प्रति समर्पण का मार्ग। नारी जिसके प्रति समर्पित होती है उससे भिन्न उसकी कोई इयत् सत्ता नहीं रह जाती है। तभी तो वियोग की आशंका मात्र से ही उसकी मिलन कामना और भी तीव्र हो जाती है।

'' प्रियतम एक बार और ,
एक क्षण भर के लिये और,
मुझे अपनी ओर खींचकर,
अपनी समर्थ भुजाओं से,
अपने विश्वास भरे हृदय की ओर
खींचकर संसार के प्रकाश से मुझे छिपाकर,
एक बार फिर और खो जाने दो
एक क्षण भर के लिये और समझने दो,
यह आशंका निर्मूल है, मिथ्या है।'' 3

जगदीश गुप्त ने अपने काव्य संग्रह ''युग्म'' में स्त्री पुरूष सम्बंधों पर प्रकाश डालते हुये लिखा है।– ''मानव सम्बंध युगानुरूप नये सांचों में ढल रहे है। जिनकी चेतना सर्वथा रूढ़िग्रस्त या जडीभूत हो चुकी है अथवा भारी पूर्वाग्रह से युक्त है। उनसे मुझे कुछ भी नहीं कहना है, पर जिनमें चिंतापरक उर्वरता शेष है और जो काव्य को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठकर आत्माभिव्यक्ति के श्रेष्ठतम माध्यम के रूप में देख सकते हैं, मेरी ये कवितायें नही को सम्बोधित हैं। क्योंकि मुझे विश्वास है कि वे नैतिकता को सतही तौर पर नहीं लेगे, प्रत्युत मानव मन की जटिलता भरी गहराइयों में पैठकर उसके सच्चे स्वरूप को समझने और आकलित करने को उत्सुक होंगे।4

इस प्रकार इसमें स्त्री–पुरूष सम्बंधो को कवि ने पहले से भिन्न दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। कहीं भी किसी प्रकार की कुण्ठा नहीं, बल्कि सह– अनुभूति की सधनता है–

''मैं तुम में हूँ,
और तुम मुझमें
ऐसा कहने से शायद
यह कहना ज्यादा मतलब रखता है
कि————————
तुम एक सब हो मुझसे बाहर
और मैं एक सत्य हूँ तुम्हारे भीतर
इससे खुलने वाले अर्थ में
एक के भीतर एक पिरोये हुए
प्रतिबिम्बों की पूरी पंक्ति उभर आती है,
हमें भीतर और बाहर के बीच एक ऐसा
सेतु चाहिये जो धार को निर्बांध बहने भी दे
और हमे अविभाजित रहने भी दे,
क्या हमारे आपसी प्रतिबिम्बों की पंक्ति ही,
वह सेतु नहीं हैं।'' 5

स्त्री–पुरूषों के लिये बनाये गये नैतिकता के मानदण्ड भी अलग–अलग है। आज नारी ने उन मानदण्डों को भरपूर चुनौती दी है। आज नारी भी पुरूष के समान ही अपनी इच्छाओं, अभिलाषाओं एवं आंकांक्षाओ की पूर्ति के लिये स्वतंत्र है। जिस प्रकार पुरूष अपनी काम भावनाओं की सन्तुष्टि के लिये नारी का आहवान कर उठता है–

''आह मेरा श्वांस है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारी। 6

उसी प्रकार नारी भी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये पुरूष का आह्वान करती है–

"मुझे चूमो ! हिमगिरी बना दो,
मुझे चूमो ! उद्‌गम सरोवर बना दो,
मुझे चूमो ! नदी बना दो,
मुझे चूमो ! सागर बना दो,
फिर मेरे तट पर धूप में निर्वसन लेट जाओ
मुझे चूमो ! खुला आकाश बना दो। 7

विवाहित जीवन में तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति के अनुभव मात्र से आयी हुयी कटुता को भी नयी कविता में अभिव्यक्ति मिली है–

"आज मैंने जाना
कि संसार की सारी औरतें
एक सी होती है,
उन सभी बातों में
जो मरदों से सम्बद्ध है,
दोषों के उन पुतलों से
जिसके अवगुनों को परखने का
माइक्रोस्कोप
सिर्फ औरत के पास है।।" 8

धर्मवीर भारती ने स्त्री–पुरूष सम्बंधों को सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा है। 'कनुप्रिया ' की राधा–कृष्ण से सीधे शब्दों में प्रश्न करती हैं–

"मान लो कि मेरी तन्मयता के गहरे क्षण,
रंगे हुये अर्थहीन आकर्षक शब्द थे,
तो सार्थक फिर क्या है कनु। 9"

आज नारी अपनी प्रेमकथा को अंकित करने के लिये समय के धनुर्धर को ठहरने के लिये कहती है।–

" और कह दो अपने समय के अचूक धनुर्धर से ,
कि अपने शायक उतार कर
तरकस में रख ले
और अपने पंख समेट कर द्वार पर चुपचाप
प्रतीक्षा करें
जब तक मैं,
अपनी प्रगाढ़ केलि कथा का अस्थायी विराम चिह्न
अपने अधरों से
तुम्हारे वक्ष पर लिखकर, थककर
शैथिल्य की बाहों में
डूब न जाऊँ।" 10

नयी कविता ने स्त्री–पुरूष के टूटते हुये सम्बंधो को भी रूपायित किया है। नयी कविता का कवि बिखरते हुये सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुये कहता है–

'' दो गर्म हथेलियों के बीच ,
बर्फ की एक पर्त
नहीं, मुझे स्वीकार नहीं
जीने की यह शर्त ।''
अधरों पर सोये ज्वालामुखी से शब्दों को,
नहीं मुझे स्वीकार नहीं वक्ष में बसाना,
रोम रोम जलते हुये एक वन को
नहीं मुझे स्वीकार नहीं,
शील की ऊँची गिरिमाला में छिपाना
तट पर तरी की जगह
पड़ी हुई राख पर क्या करूंगा मैं
प्यार का उमड़ता
सिन्धु यहउलचकर।''

अशोक वाजपेयी का कहना है–''संभवतः नई कविता से पहले कभी मानवीय सम्बंधो को उतना गौरव नहीं मिला और ना ही उनमें निहित करूणा, तनाव, अकेलापन सीधे ढंग से काव्य में अवतरित हुये थे जितने की नयी कविता में हुये हैं।''

स्पष्ट है कि नयी कविता अपने समय संदर्भों में मानवीय उपस्थिति और लगाव की कविता है। विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप स्त्री–पुरूष सम्बंधों में जो बदलाव आया उसे नयी कविता ने पूरी समग्रता में अभिव्यक्ति दी है। यह बहुआयामी जीवन की सच्चाइयों को बिना लाग–लपेट के स्थापित करती है। दरअसल यह जीवन की बहुपक्षी अनुभूतियों को कलमबध्द करने की एक जटिल यथार्थवादी प्रक्रिया है। नयी कविता का सारा दृष्टिकोण आधुनिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1– चिन्ता, (भूमिका), अज्ञेय , पृष्ठ सं0– 5
2–चिन्ता, अज्ञेय , पृष्ठ सं0– 46
3– चिन्ता, अज्ञेय, पृष्ठ सं0– 74
4– युग्म, जगदीश गुप्त, पृष्ठ सं0– 30–31
5– युग्म, जगदीश गुप्त, पृष्ठ सं0– 9
6–तारसप्तक, संम्पादक–अज्ञेय,
7– जंगल का दर्द, सर्वेश्वर दयाल सम्सेना , पृ0सं0– 109–110
8– जो बॅध नही सका, गिरिजा कुमार माधुर, पृ0 सं0–69
9– कनुप्रिया, धर्मवीर भारती
10–कनुप्रिया, धर्मवीर भारती, पृ0सं0–57
11–एक सूनी नॉव, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना , पृ0सं0– 18.19

Hindu Festival And Environmental Degradation

Dr. Raju Kumar Singh
Assistant Professor, Dept. of Sociology
ANM PG College, Ballia

Abstract:-

Festivals constitute an integral part of Hindu religions practices and the Hindu Festival assume their fullest expressions in the religions function- the repositories of religions culture and traditions. In this paper it is examined by a case study of the Hindu festival "Holi" now Hindu festival is a cause of environmental Degradation.

Keyword :- Holi, Hindu festivals, Religions function arias, rituals, India.

Festivals are celebrated in almost all societies and cultures in some form or another (Get : 1991) but the research on festivals differ in the "Western" and "non-western" world, both in quantitative and qualitative terms (Picard & Robinson, 2006). Most research in western world that focuses on festival explains them as cultured events reinvented by communities to fulfill their leisure and recreational needs, for construction of their identities, and for socio-economic dement (Derett : 2003). The nature of festivals in two different context studies : nomothetic approach is common in the west. While idiosyncratic approaches dominate the studies of non-western festivals; that is, researchers in the West often are interested in spotting features that are widely observable across a range of festivals while in the east festivals are studied for their intrinsic importance.

Celebrating festivals constitute a fundamental religious practice for most Hindus (Rinehart : 2004). The majority of research on Hindu festivals has focused on examining aspect related to mythology, cosmology, and socio-cultural milieu (Lutgendorf : 1994). These studies rangeacrossdifferent disciplines such as religious studies, anthropology, ethnography and geography, from studies of the colossal gatherings at the pan-Indian Kumbh mela to ethrographic accounts of village level festivals (Maclean : 2003, Shackley 2001). Attention has also paid to the promotion of festivals for cultural tourism by government tourism agencies and private operators (Jaitly : 2001). Some studies have raised concerns over increasing tourist flows during festivals and their socio-economic and environmental impacts on the place and community. (Shinde : 2007).

The one Hindu festivals has been taken as a case study for the depicting of how contemporary practices of Hindu festivals harms environment.

Holi in Hindu Mythology and Practice

Holi has been celebrated all over India since ancient times but its precise from and purpose varies according to the mythological legends adopted in different regions. Beginning from the full moon day (Pournia) of the Hindu lunar month of Phalgun (Feb.-

March), this festival is celebrated for two to more than 15 days, depending on regional variations. Although Holi is also considered an agricultural festival to celebrate the arrival of spring its ritual celebrations are rooted in several mythological legends.

In general, celebration of the Holi festival involves reenactment of two most popular mythological events. On the evening of the first day of Holi, a public bonfire is held to commemorate the burning of the demones Holika. Her brother, a powerful demon-king, instructed Holika to Kill his own son prahlad, who was an ardent devotee of Vishnu, by making him sit with her on a pyre of fire. Vishnu served his devotee and prahlad came out of the fire uncatched but Holika, who was believed to be immune to fire, was burned to death. The burning of Holika- the evil force is celebrated through lighting of the fire in Holi.

The second component of the festival is the tradition of playing colors, which draws its roots from a legend, directly related to Krishna and his divine consort, Radha. Krishna is believed to have complained to his mother about the contrast between his dark color and Radha's fair color. Krishna's mother teasingly asked him to color Radha's face in any color he wanted the Krishna mischievously colored Radha's face. The underlying feeling of this fun frolic was love and devotion. People religiously follow and enact pranks the young Krishna played with Radha and gopis (wives and daughters of cowherds). In imitating Krisna's played with Radha and gopis, the holi festival also provides a temporary opportunity for Hindus to disregard social norms and social restriction normally associated with caste, sex, status, and age. The festivities include colorful processions with music, song, dance and some boisterous scenes.

During Holi, in addition to setting air-pollution bonfires, celebrants mark the beginning of spring by throwing abundant quantities of colored powders and liquids at each other. *I have observed in the field area of the Haridwar. Everyone is running around the streets and parks and temples throwing handful of bright-colored powdered everywhere and tossing water balloons filled with colored water at their friends and neighbors until everybody and everything is covered with a thick dusting of brilliant yellows and reds and greens and purples. Everyone is happy and smiling and dancing and seemingly having the time of their lives.*

Except that, or course, a lot of this stuff is dangerous. This wasn't the case back when the colors were made from natural sources like followers and leaves and turmeric, but now that most of the colors are made from chemicals, like lead oxide and aluminum bromide, the practice has become a problem. For one thing, coming into direct contact with the chemical dyes can harm skin eyes and throats and lungs.

For Holi, The symbol of victory over evilness, celebrating the arrival of spring and reflection of the various colors of spring season.

Shows to the theory of embedded ecologies emerges through an exploration of subtle and complex relationship between cultural and natural worlds. Cultures often provide the lens through which perception of natural world is understood and acted upon.

One of the greatest achievements of Emile Durkheim, the French sociologist, was that he made a distinction between 'what people do' of which they are aware, and 'what emerges from their collective acts, of which they are an aware (Merton : 1957). The first acts are intentional. People know that they are doing and why. What donot know and perhaps cannot anticipate – is the unanticipated consequences of their actions, and it is for the observes of their actions to envisage the outcome. Durkheim (1915) showed in his work on Australian totemism, which since then has become a classic in the sociology of religion, that the periodic totemic rituals create a sense of solidarity among the clanspersons. People certainly do not assemble for a ritual with an explicit aim to generate cohesiveness among them : they came together to venerate their totems that are their ancestors, the perform rituals for the multiplication of their totems. From all this would follow a sense of well being, which is essential for their continued existence. But these rituals would create and rejuvenate ties between people within the Caln as well as of different clams. Because of these rituals, the individuals are integrated in a whole. No more are they isolated and lonely. It is the sense of adhesion that gives them a meaning of life.

Conclusion

Durkheim's ideas, later substantially developed by many anthropologist and sociologists, can be usefully applied to the religious practices of people to understand their unanticipated consequences. These examples make clear that these rituals related to the festivals of Hindus enhance the social cohesion of the individuals which are integrated in a whole, but unanticipated consequences of these festivals are environmental degradation.

References

Dhere, M.A. Chandrasekhar, B.P. Pratapsingh, B.P. & Dhanraj, A.P. (2008), Municipal solid waste disposal in Pune city – An analysis of air and ground water pollution. 95(6) : 773-777.

Garg, S.P. & Porwal, M.C. (1986). Impact of tourism on Haridwar and its environments with special reference to Kumbh 1986. Meerut : Research India publication.

Kaushik, K, S. and Joshi, B.D. (2010). A note on the pilgrimage pressure on Mansa Devi hillock of Haridwar, J. Env. Bio-Sci. 24(2) : 267-269.

Gangwar, K.K. and Joshi, B.D. (2008). A preliminary study on solid waste generation at Hark ki Pauri, Haridwar, around the Ardh-Kumbh period of sacred bathing in river Ganga in 2004. The Environmentalist. 28: 297-300.

Kaur, S. & Joshi, N. (2002). The solid waste generation during normal days in Haridwar city. Hiom J. Env. 2001. 16(2) : 267-270

Sharma, V. Saini, P. & Joshi, B.D. (2010). Assessment of Municipal solid waste generation and its management in the holy city of Haridwar. Uttarakhand state, India waste Management 30 : 725-728

Mishra, S. & Joshi, N. (2002). Generation of solid waste during festive occasion in Haridwar city. In Him. J. Env. 2001. 16(20) : 263-266.

Saini, P., Sharma, V. and Joshi, B.D. (2009). A random survey report about rise in water borne diseases. In journal of Env. Bio-Sci. 23 (2) : 215-219

Ahel, M. Mikac, et al. (1998). The impact of contamination from municipal solid waste landfull (Zagreb, Crotia) on underlying soil. In Wat. Sci. Tech. 37(8) : 203-210

Jacobsen, Knut, A. (2013). Pilgrimage in the Hindu Tradition: Salvic space, New York : Routledge.

Derret, R. (2003). Making sense of how festivals demonstrate a community's sense of place. In Event Management, 8, 49-58.

Getz, D. (1991). Festivals, special events and tourism, New York : Van Nostrand Reinhold.

Lutgendorf, P. (1994). My Hanuman is bigger than yours. In History of Religious, 33(3), 211-245.

Macelan, K.K. (2003). Power and pilgrimage : The Kumbhmela in Allahabad, 1765-1954. Unpublished Ph.D. thesis, La, Trobe University, Melbourne.

Picard, D. Robinson, M. (eds.). (2006). Festivals, tourism and social change-Remaking worlds. Clevedon, UK : Channel view publications.

Rinehart, R. (2004). Contemporary Hinduism : Ritual, Culture and practice. California : ABC – CLIO.

Shcakley, M. (2001). Managing sacred sites : Service provisions and visitor experience. London/New York : Continum.

Shinde, K.A. (2007). Pilgrimage and the environment : Challenges in a pilgrimage centre. Current issues in Tourism, 10(4). 343-365

Brahmpurana, Prayaschittatattva 2/535

Durkhiem, Emile, (1915) Elementary forms of Religious life, Tr. J.W. Swain. New York : Free Press. 1965

Geertz, Clifford, (1966). Religion as a cultural system. In M. Bantom (ed.) ; Anthropological Approaches to the study of religion. London : Tvistock.

Social Aspects of Sports In India

Dr. Bharti Rastogi
Assistant Professor, Department of Sociology
Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.

INTRODUCTION

Games and sports play a pivotal role in the process of overall development of the people.Physical strength and fitness, attained through regular exercise, have been significant factors leading to better health, hard working capacity and wellbeing of the people since time immemorial. In early ancient period various physical activities including hunting were needed for survival (food), shelter and safety of the people from wild animals or enemies. Over a long period of time, practice of different physical activities needed for hunting, survival and safety changed through the process of evolution as games and sports. Sporting activities have been a key feature of societies since ancient times, exemplified in the Olympic games of ancient Greece and the Roman era of gladiatorial and other contests. As the industrial revolution spread, so many sports and plays became rationalized and organized from their base in Northern Europe and exported globally by European colonizers and missionaries through the twentieth century (Pike and Coakley, 2009). The review of literature shows that presently main motives for participation in physical activities termed as games and sports are not survival or safety but concerned with: improving skills, developing physical fitness, experiencing success, enjoying excitement and having fun etc (Sharma, 2011) .With such changes in motivations, it has been hypothesized that participation in sports, to a great extent, may depend on socio-economic and cultural characteristics of the people.

A fruitful analysis relating to socio-economic and cultural aspects of the games and sports needs intensive study of the sociology of sports. During latter part of the twentieth century, Sociology of Sports slowly emerged as an area deemed worthy of serious scholarly attention. In many countries, sociologists have started focusing on social and economic conditions under which people are attracted towards games and sports. In India, the required attention has not been paid to investigate and emphasized the association of socio-economic and cultural scenario of the country with development and promotion of the sports. Major Objective of the present paper is to find out the relationship of social, economic,

demographic and cultural features of the people with their participation and performance in games and sports. The analysis is mainly based on information collected from important periodicals, journals, research reports, publications of the United Nations and news papers etc.

LEVEL OF PERFORMANCE

During the preceding twenty years, the performance of India in different Olympic Games has been very poor in different games and sports. In Olympics 1996, 2000 and 2004, the country could not achieve more than one medal in any year. In only 2012, 6 medals were won including two silver and four bronze.During the last 20 years only one gold medal could be won in 2008 in Beijing. In 2016 Olympic Games at Rio, the country could get only two medals including one silver and one bronze (Table:1).

Table:1

Number of Medals Won by India During Last 20 Years (since 1996) In Olympic Games

Year	Host Country	Game	Medals Won			
			GOLD	SILVER	BRONZE	TOTAL
1996	ATLANTA	TENNIS	-	-	01	01
2000	SYDNEY	WEIGHT LIFTING	-	-	01	01
2004	ATHENS	SHOOTING	-	01	-	01
2008	BEIJING	SHOOTING	01	-	-	03
		B0XING	-	-	01	
		WRESTLING	-	-	01	
		SHOOTING	-	01	-	
		BADMINTON	-	-	01	
		B0XING	-	-	01	

2012	LONDON	WRESTLING	-	-	01	06
		WRESTLING	-	01	-	
		SHOOTING	-	-	01	
2016	RIO	WRESTLING	-	-	01	02
		BADMINTON	-	01	-	
TOTAL						14

SOURCE: www.olympic.indi.in

Table: 2show the number of medals won by India and certain other Asian countries in 2014 Asian Games (xvii Asiad). The table demonstrates that highest number of medals numbering 344 was won by China including 151 gold, 108 silver and 85 bronze medals .India could win 57 medals as compared to 228 by South Korea, 201 by Japan and 47 by Thailand. India being a larger country in terms of population should have won higher number of the medals.

In Rio Olympics of 2016,the medal winning performance of India was very poor. India sent 117 athletes to Rio- the highest number ever-spread across 15 disciplines. After some improvement in performance in Beijing and London as shown in table: 1, the country failed to build on the momentum in 2016. In Rio Olympics of 2016,India won only 2 medals as compared to 121 medals won by USA (including 46 gold medals), 70 by China,67 by Britain and 56 by Russia (Table:2). Even the countries like Norway and Indonesia performed better than India.

SOCIO-ECONOMIC AND DEMOGRAPHIC PROFILE

In spite of being the second most populous country in the world with population of about 1.3 billion, India has been performing poorly in games and sports. It would be significant to find out the reasons for such poor performance of the country. China, the most populous country in the world with population of 1393.8 million in 2014, won highest number of medals in 2014 Asian Games and second highest in Rio Olympics of 2016 (Table:2).China managed to win larger number of medals because of its population is well educated with better health and quality of life. China is one of the Asian countries having highest value of Human Development Index (HDI) in Asia. The HDI is a composite index indicating the level of

socio-economic development of a country. HDI focuses on three basic dimensions of human development to lead a long and healthy life, measured by life expectancy at birth,the ability to acquire knowledge measured by mean years of schooling and expected years of schooling and the ability to achieve a decent standard of living, measured by gross national income per capita (UNDP,2015).Table:2 shows that the countries with smaller size of population than India such as USA, Britain, Russia, Germany and Japan etc.have higher socio-economic status as compared to India in terms of HDI.At the same time these countries with higher socio-economic development (HDI) won the higher number of medals in Rio Olympics (2016). It can be seen from Table:2 that if we exclude a small country Norway, USA with highest value of HDI (0.915),

TABLE: 2

NUMBER OF MEDALS WON BY DIFFERENT COUNTRIES IN 2014 ASIAN GAMES(XVII ASIAD) HELD AT SOUTH KORIA (SEPT.19-OCT.2014) AND 2016 OLYMPICS HELD AT RIO,ACCORDING TO SIZE OF POPULATION AND HUMAN DEVELOPMENT INDEX (HDI)

NO	COUNTRY	NUMBER OF MEDALS WON				POPULATION (MILLION-2014)	HDI (2014)
		GOLD	SILVER	BRONZE	TOTAL		
	(a) 2014 Asian Games						
1.	China	151	108	85	344	1393.8	0.727
2.	South Korea	79	70	79	228	49.0	0.898
3.	Japan	47	77	77	201	127.0	0.891
4.	India	11	10	36	57	1267.4	0.609
5.	Thailand	12	07	28	47	67.2	0.726
6.	Indonesia	4	5	11	20	252.8	0.684
7.	Pakistan	1	1	3	5	185.1	0.538
8.	Bangladesh	0	1	2	3	158.5	0.570

9.	Srilanka	1	0	1	2	21.4	0.757
10.	Nepal	0	0	1	1	28.1	0.548
	(b) Rio Olympics (2016)						
	USA	46	37	38	121	322.6	0.915
	China	26	18	26	70	1393.8	0.727
	Britain	27	23	17	67	63.5	0.907
	Russia	19	18	19	56	142.5	0.798
	Germany	17	10	15	42	82.7	0.916
	Japan	12	8	21	41	127.0	0.891
	Norway	0	0	4	4	5.1	0.944
	Indonesia	1	2	0	3	252.8	0.684
	India	0	1	1	2	1267.4	0.609
	Singapore	1	-	-	1	5.5	0.912

Source: (i) http//en.wikipedia.org/wiki/2014_Asian_Games_medal_table (ii) www.olympic.ind.in, DainikJagran, Varanasi, 23 Aug.2016. (iii)For Population and HDI: United Nations Development Programme (UNDP), *HumanDevelopment Report, 2015, Newyork*.

won largest number of medals (121) in Rio Olympics. The top ten countries in the medals standings in Rio Olympics, are in the "Very High Human Development" category in UNDP's Human Development Index(Sen,2016).The analysis indicates that socio-economic features of the countries are significantly related with their level of performance in the sports. In India, illiteracy, lower education, poverty, lower standard of living and poor health reflecting lower HDI value are significantly associated with lower performance of the country in games and sports.

Cultural Features

In India a lot of importance is given to academics while sports are generally considered as a "time pass "or recreational activities. There is a general belief that 'sports' is a very uncertain career and does not necessarily offer very bright opportunities. Parents generally force their children to take up academics and studies with greater scope for jobs and earnings, often despite their interest and passion towards sports (Bajpayee, 2010).In Indian society Games and sports have not been preferred by most of the parents. As influenced by Indian culture ,there has been a saying in Hindi –"KhelogeKudoge to HogeKharab,PadhogeLikhoge to BanogeNavab",which means that your life will be spoiled if you play but if engage in studies you will be a king. Sports are treated as extracurricular activity which cannot match up to the regular curriculum in terms of importance. The sport-culture is lacking in the schools and colleges.

Many Indian schools and colleges lack infrastructure and facilities needed for sports such as play grounds and equipments etc. We firstly need to make sure that every schoolat least has a play ground.Basic facilities for sports are to be improved to develop spots culture in the country.

In Indian cultural settings, discrimination and different forms of atrocities against females have been existing at large scale preventing them from obtaining education, health care and employment etc. Females constitute nearly half of the population and among such large number many women may have potential and talent to be successful in games and sports. Daughters need nourishment, health care and education at par with the sons. With the victory of P V Sindhu and Shakshi Malik and surprising performance of Deepakarmaker in Rio Olympics (2016), the slogan –"Beti Bachao and Beti Padhao" has been suggested to be improved as "Beti Bachao , Beti Padhao and beti ko Khel Khilao" (Ghosh, 2016).

Bureaucratic procedures, corruption and favoritism are gradually becoming part of the culture in Indian society and these evils are also adversely affecting the process of promoting games and sports. Funds allocated for sports are not properly utilized and do not reach athletes when needed (Sanjeev, 2016).

CONCLUSION

Above analysis reveals that despite the demographic advantage of having large population size of about 1.3 billion, India has been performing poorly in games and sports. It has been found that such poor performance is associated with lower level of human development in the country indicated in terms of lower value of HDI. The studydemonstrates that parents

generally force their children to take up academics and studies with greater scope for jobs and earning, often despite their interest in the sports. Poverty, unemployment, illiteracy, low standard of living, loweducation, poor health, lack of facilities in schools and colleges and the absence of sports culture among the masses are the major barriers in the development of the sports in the country. Bureaucratic system, corruption and discrimination against females also act as obstacles in promoting the sports.

The analysis mainly suggests that the socio-cultural ethos with positive attitudes towards sports should be developed in the society with the joint efforts of government, media and the NGOs.Intensive efforts are needed to raise health status, socio-economic conditions and standard of living of the people to promote human development. In educational system, sports should be a part of the curriculum. There is need to make sure that every school has at least a play ground. Evils of bureaucratic system should be removed with effective check on corruption and favoritism. Funds allocated for sports need to be properly channeled.

REFERENCES

BajpayeeKaushalya, 2010,"What Ails Indian Sports",*Yojana, vol.54, September*.

Ghosh Sagarika, 2016, "Sindhustan", *Times of India*,Varanasi,22 August.

Pike C.J. and Coakley Jay,2009,*Essays,Sociology of sports*,oct.www.esocialsciences.org

Sanjeev Nirupama, 2016*, HindustanTimes*, Lucknow, Aug.26.

SenRonojoy, 2016, "What Determines Olympic Success: a nations' wealth, health, HDI ranking and quality of Institutions all matter", *The Times of India*, Varanasi, 23 Aug.2016.

Sharma, Rajkumar, 2011, "Study of Socio-Economic Status and Participation Motives in Sports of Inter-university level players",*Amass*, Multilateral Research Journal, vol.3, No.1, May-June, MeeraPublications,Varanasi.

UNDP (United Nations Development Programme), 2015, *Human Development Report*, New York.

Journal of Socio-Educational & Cultural Research, Vol. 6, No. 12, Jan-June, 2020 ISSN : 2394-2878

उज्जवल भविष्य की ओर–नया भारत

डॉ0 शिवम श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग
किसान पी0जी0 कॉलेज, बहराइच, (उ0प्र0)

रेखा सिंह
सहायक प्रोफेसर,
शकुन्तला मेमोरियल एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, उन्नैसा, बहराइच, (उ0प्र0)

सार संक्षेप

युवा देश के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है, युवाओं को देश के विकास के लिए अपना सक्रिय योगदान प्रदान करना चाहिए। युवा उम्र से नहीं उम्र के साथ दृष्टिकोण से भी युवा माने जाते है। युवा अवस्था अद्भुत है इन्हे बेहतर शिक्षा चाहिए। स्वामी विवेकानंद जी के विचार स्मरणीय है– "शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है। और आत्मसात हुए बिना वहीं पड़ रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन निर्माण मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हो। हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने मानसिक वीर्य बढ़े बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। जिसका जीवन ठहर गया है, जिसके अंदर नया सीखने की नया सोचने की संभावनाएं नहीं है, जिसके अंदर क्राति के बीज नष्ट हो गए है, जिसके मन में देश के प्रगति की, संस्कृति के संरक्षण की समाज को आगे बढ़ाने की सोच करवटे नहीं लेती, जिसकी रगों में देश–भक्ति की उमंग, उल्लास उत्साह का उबाल नहीं आता, जिसके मन में दीन–दुखियों पीड़ितो को देखकर दया, करूणा का सागर नहीं उमड़ता वो 18 वर्ष के है, 20 वर्ष के है, 25 के है या 30 वर्ष के है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपनी युवा–अवस्था को खो चुके है। यदि व्यक्ति 50 वर्ष का है, 60 वर्ष का है या 80 वर्ष का है यदि उसके मन में नित नए विचार है, हौसला है, खतरों से खेलने की हिम्मत है, नित नया सीखने की उत्कंठा है यदि उसके मन में राष्ट्र–निर्माण की देश, धर्म संस्कृति की उत्थान की सेवा–भावना है तो सही मायने में वही युवा है। जो देश को गति और प्रगति दोनों देने में सक्षम है। तभी एक नए भारत का निर्माण संभव है। "ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ पहले से ही हमारे अंदर है। हम खुद ही है जो अपनी आँखों पर हाथ रख लेते है और कहते है कि कितना अंधेरा है।

नया भारत 'नई आशाएँ' कितना सरल शब्द है। शायद सभी इसका मतलब यही समझते है, कि कुछ नयापन भारत में आने वाला है, कुछ नई नीतियाँ आने वाली है जिससे हम सबको फायदा होगा। मन में कई सवाल भी खड़े होंगे कि यह नयापन भारत में कब आएगा ? कौन लाएगा ? यह आस हम सब किसी एक अज्ञात शक्ति से लगाए हुए है। जैसे – कि कोई जादूगर आएगा और नये भारत का निर्माण कर जाएगा। यदि हर व्यक्ति यही सोचता है तो यह मानव जाति के लिए अत्यन्त

हास्यास्पद बात है। क्योंकि वास्तविकता तो कुछ और ही है। हम सब नयापन तो चाहते है वो भी प्रत्येक क्षेत्र में, परंतु कभी पहल करने की कोशिश नहीं करते। बल्कि आज की भाग–दौड़ भरी जिन्दगी में एक ऐसी रेस में हम सभी शामिल हो चुके है जिसकी सीमा का कोई अता–पता ही नहीं है। हमारी जिन्दगी खत्म हो जाती है, परन्तु रेस की सीमा हमें प्राप्त ही नहीं हो पाती। इस अंध दौड़ में सभी भाग रहे है। ऐसी स्थिति स्थितियाँ – परिस्थितियाँ हम अपने आस–पास बना लेते है कि आजीवन हम भागते – दौड़ते रहते है, कभी याद ही नहीं रहता कि कब थोड़ा ठहरकर चैन की साँस ले लें।

हम सोचते है कि यदि ठहर गए तो दौड़ में कहीं पीछे न हो जाए। यही है आज के मानव का जीवन, जो कब प्रारंभ होता है और कब समाप्ति की और अग्रसर हो जाता है ज्ञात ही नहीं होता। और जब तक हम जीवन की वास्तविकता को समझते है तब तक हमारा अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। मनुष्य आखिर मनुष्य ही तो है देवता नहीं। और इसीलिए ''मनुष्य अपने जीवन दर्शन और संसार के प्रति अपनी धारणा के अनुसार ही जीते हैं।''[1]

परंतु यह विचार करने की बात है कि बर्बर मानव से आज सभ्यता और संस्कृति युक्त मानव का निर्माण हुआ है तो यह बैद्धिक चिन्तन, आध्यात्मिक सोच, गहन अध्ययन और खोज के परिणामस्वरूप हुआ है। तमाम वैचारिक क्रांतियों का परिणाम है कि आज मनुष्य तथ्यात्मक विचारों की बात करता है। आलोचनात्मक चिंतन भी करता है और विचारों को सत्यता की कसौटी पर कसता है। तब जाकर एक सार्थक वक्तव्य की उत्पत्ति होती है और इसी आधार पर समाज को सही दिशा मिलती है। हुमायूँ कबीर के शब्दों में ''यदि किसी को समाज का सृजनात्मक सदस्य बनना है तो उसे अपना ही विकास नहीं करना चाहिए बल्कि उसे समाज की वृद्धि के लिए भी योगदान करना चाहिए।[2]

परन्तु यदि हम आज के वैचारिक चितंन की बात करें तो यह कहीं थम सा गया है। इसके लिए जरूरत है सही दिशा व संकल्प की। हमारा देश भारत विश्व में युवा देश की श्रेणी में आता है। ''युवा ऊर्जा का प्रतीक है।''

इसलिए नए भारत की नवीन आशाओं के लिए युवाओं का आह्वान करना अति आवश्यक है, जब युवा शक्ति हमारे पास है तो हमें किसी अज्ञात शक्ति की क्या आवश्यकता है।

''युवा का मतलब है गति'' और जो गति सही दिशा में आगे बढ़े उसे प्रगति कहते है। युवा युग निर्माता है। परन्तु प्रश्न यह है कि युवा निर्माण कैसे करें? युवा जिस गति के साथ इस राष्ट्र में आ रहा है उसकी सोच, उसकी आयु, उसकी ऊर्जा यदि प्रगति की सही दिशा में बढ़े, इसकी चेष्टा में हम सबको लगना होगा। युवाओं के शक्तिवर्द्धन का प्रयास होना चाहिए। ''शक्तिवर्द्धन से अनेक लाभ है। इससे राष्ट्र की रक्षा होती है। तथा समाज की प्रगति भी होती है।''[3]

जो ध्येय हमारा है वह है निर्माण का। यानी युवा निर्माण कैसे करें? यह परिस्थिति हमारे सामने है। यदि निर्माण के लिए किसी चीज की आवश्यकता है जैसे–हथियार, औजार यानी अपनपा कर्म अपनी ऊर्जा। उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यदि कुछ है तो वह है, ''दृष्टि'' यानी (Vision)। यदि आपको एक छोटा सा घर भी बनाना है तो उसके लिए सार्वाधिक आवश्यक यदि कियी चीज की होती है तो वह है दृष्टि की।

यहाँ तो राष्ट्र निर्माण के विषय में चिंतन कर रहे है कि ये युवा जो देश का निर्माण करेंगे क्या उनके पास दृष्टि है? यहाँ दो शब्द बहुत महत्वपूर्ण है– एक है 'मजदूरी' दूसरा है 'परिश्रम'। दोनों में

भिन्नता क्या है? यह जानना भी हमें जरूरी है– ''जब बिना दृष्टि के काम किया जाता है, निरंतर काम किया जाता है बिना उद्देश्य के पसीना बहाया जाता है, निरंतर खून सुखाया जाता है तो उेस 'मजदूरी' कहते है। मगर दृष्टि के साथ, ध्येय के साथ जब आप निर्माण कार्य में लग जाते है तो उसे कहते है 'परिश्रम'। कहाँ जाता है? जब तक यह पता हो, उसके साथ ध्येय को देखते हुए जो काम आप करते है वह होता है 'परिश्रम'। वह मजदूरी नहीं होती।

बहुत सारी मजदूरी आप कर सकते है मगर आप वहीं के वहीं रह जाएंगे। इससे राष्ट्र का निर्माण नहीं होगा। राष्ट्र को कहाँ पहुँचना चाहिए इस ध्येय को समझते हुए हमें अपना योगदान प्रतिदिन देना होगा। यह सोचकर प्रत्येक युवा को चलना होगा। राष्ट्र का निर्माण तभी संभव है जब युवा मजदूरी छोड़कर परिश्रम करेगा। परिश्रम का अंत ध्येय की प्राप्ति है। परिश्रम के बल पर तो रेगिस्तान में भी पानी की प्राप्ति हो जाती है। फिर आदर्श राष्ट्र का निर्माण संभव क्यों नहीं है?

भारत के राष्ट्रीय आदर्श है त्याग, सेवा और आत्मविश्वास। परन्तु इन आदर्शों को प्राप्त करना बड़ा कठिन सा लगता है क्योंकि यह तभी संभव है जब चिंतन और बोध की यात्रा एक हो।

जब हम न्यूज चैनल पर देश में कहीं भ्रष्टाचार की खबर कोई घटना–दुर्घटना या दुराचार की बात सुनते है तो हम अपनी कक्षा की पढ़ाई–लिखाई अपने विद्यार्थी जीवन को अपने राष्ट्रीय जीवन से समर्पित होने से जोड़ नहीं पाते हम अपने आप को असमर्थ पाते है।

चिंतन, विचार, बोध होते हुए भी देश की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही है कि एक पूरी पीढ़ी विद्यालय विश्वविद्यालय से निकल जाती है, यह बोध हुए बिना कि हम इनको विद्यालय या विश्वविद्यालय क्यों भेज रहे है। आज स्कूल का लक्ष्य कॉलेज बना दिया गया है कॉलेज का लक्ष्य नौकरी बना दिया गया है, नौकरी का लक्ष्य अच्छी तनख्वाह बना दिया गया है। और अच्छी तनख्वाह का लक्ष्य एक बड़ी सी गाड़ी, बंगला बना दिया गया है। क्या इस विचार को किसी राष्ट्र की प्रगति का आधार माना जा सकता है। ऐसी शिक्षा किसी राष्ट्र की प्रगति का आधार कदापि नहीं हो सकती। क्योंकि यह बौद्धिक चिंतन का मार्ग प्रशस्त नहीं करती।

शिक्षा ऐसी हो जो प्रत्येक व्यक्ति में नेतृत्व क्षमता को विकसित करे। वैचारिक क्रांति लाए। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शिक्षा को समाज की किसी समस्या से जोड़कर उसको दूर करने का प्रयास करना चाहिए। यदि वह किसी एक भी व्यक्ति की समस्या का समाधान करने में सक्षम हो जाता है तो वही सही मायने में शिक्षित है।

युवा शक्ति देश और समाज की रीढ़ होती है, युवा देश और समाज को नए शिखर पर लो जाते है, युवा देश का वर्तमान है, तो भूतकाल और भविष्य के सेतु भी है, युवा देश और समाज के जीवन मूल्यों के प्रतीक है, युवा ऊर्जा और उच्च महत्वाकांक्षाओं से भरे हुए होते है, उनकी आँखों में भवष्यि के इंन्द्र धनुषी स्वप्न होते है, समाज को बेहतर बनाने और राष्ट्र के निर्माण में सर्वाधिक योगदान युवाओं का ही होता है, देश के स्वतंत्रता आंदोलन में युवाओं ने अपनी शक्ति का परिचय दिया था। प्रगतिशील भारत निःसन्देह प्रगति की उच्चतम ऊचाइयों तक पहुँचेगा और यह कार्य देश का युवा वर्ग करेगा।[4]

भारत एक विकासशील और बड़ी जनसंख्या वाला देश है, यहां आधी जनसंख्या युवाओं की है, देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या की आयु 35 वर्ष से कम है, संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत सबसे बड़ी युवा आबादी वाला देश है, यहाँ के लगभग 60 करोड़ लोग 25 से 40 वर्ष के है, यह स्थिति वर्ष 2045 तक बनी रहेगी, विश्व की लगभग आधी जनसंख्या 25 वर्ष से कम आयु

की है, अपनी बड़ी युवा जनसंख्या के साथ भारत अर्थव्यवस्था की नई ऊँचाई पर जा सकता है, परंतु इस ओर भी ध्यान देना होगा कि आज देश की बड़ी जनसंख्या बेरोजगारी से जूझ रहीं है, भारतीय सांख्यिकी विभाग द्वारा जारी आंकड़ो के अनुसार देश में बेरोजगारों की संख्या लगातार बढ़ रहीं है, देश में बेरोजगारों की संख्या 11.3 करोड़ से अधिक है, 15 से 60 वर्ष आयु के 74.8 करोड़ लोग बेरोजगार है, जो काम करने वाले लोगों की संख्या का 15 प्रतिशत है, जनगणना में बेरोजगारों की श्रेणीबद्ध करके गृहणियों, छोत्रों और अन्य में शामिल किया गया है, यह अब तक बेरोजगारों की सबसे बड़ी संख्या है, वर्ष 2001 की जनगणना में जहाँ 23 प्रतिशत लोग बेरोजगार थे, वहीं 2011 की जनगणना में इनकी संख्या बढ़कर 28 प्रतिशत हो गई, बेरोजगार युवा हताश हो जाते है, ऐसी स्थिति में युवा शक्ति का अनुचित उपयोग किया जा सकता है, हताश युवा अपराध के मार्ग पर चल पड़ते है, वे नशाखोरी के शिकार हो जाते है और फिर अपनी नशे की लत को पूरा करने के लिए अपराध भी कर बैठते है, इस तरह वे अपना जीवन नष्ट कर लेते है, देश में हो रही 70 प्रतिशत आपराधिक गतिविधियों में युवाओं की संलिप्तता रहती है।

देखने में आ रहा है कि युवाओं में नकारात्मकता जन्म ले रहीं है, उसमें धैर्य की कमी है, वे हर वस्तु अति शीघ्र प्राप्त कर लेना चाहते है, ते आगे बढ़ने के लिए कठिन परिश्रम के बजाय शॉर्टकट्स खोजते है, भोग–विलास और आधुनिकता की चकाचौध उन्हें प्रभावित करती है, उच्च पद, धन–दौलत और ऐश्वर्य का जीवन उनके आदर्श बन गए हैं। अपनी इस लक्ष्य को प्राप्त करने में जब वे असफल हो जाते है, तो उनमें चिड़चिड़ापन आ जाता है, कई बार वे मानसिक तनाव का भी शिकार हो जाते है, युवाओं की इस नकारात्मकता को सकारात्मकता में परिवर्तित करना होगा।

यदि युवाओं को कोई उपयुक्त कार्य नहीं दिया गया, तब मानव संसाधनों का भारी राष्ट्रीय क्षय होगा, उन्हें किसी सकारात्मक कार्य में भागीदार बनाया जाना चाहिए।

यदि इस मानव शक्ति की क्रियाशीलता की देश की विकास परियोजनाओं में प्रयुक्त किया जाए, तो यह अद्‌भुत कार्य कर सकती है, जब भी किसी चुनौती का सामना करने के लिए देश के युवाओं को पुकारा गया, तो वे पीछे नहीं रहे, प्राकृतिक आपदाओं समय युवा आगे बढ़कर अपना योगदान देते है, चाहे भूकंप हो या बाढ़ युवाओं ने सदैव पीड़ितो की सहायता में दिन–रात परिश्रम किया।

युवाओं को उचित मार्गदर्शन के लिए अति आवश्यक है कि उनकी क्षमता का सदुप्रयोग किया जाए। उनकी सेवाओं को प्रौढ़ शिक्षा तथा अन्य सरकारी योजनाओं के तहत चलाए जा रहे अभियानों में प्रयुक्त किया जा सकता है, वे सरकार द्वारा सुनिश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के दायित्व को वहन कर सकते है। तस्करी, काला–बाजारी, जमाखोरी जैसे अपराधों पर अंकुश लगाने में उनकी सेवाऐ ली जा सकती है। युवाओं को राष्ट्र–निर्माण के कार्य में लगाया जाए। राष्ट्र–निर्माण का कार्य सरल नहीं है, यह दुष्कर कार्य है। इसे एक साथ और एक ही समय में पूर्ण नहीं किया जा सकता है। युवा इस कार्य में अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार भाग ले सकते है। ऐसी असंख्य योजनाए, परियोजनाए और कार्यक्रम है, जिनमें युवाओं की सहभागिता सुनिश्चित की जा सकती है, युवा समाज में साजाजिक आर्थिक और नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है, वे समाज में प्रचलित कुप्रथाओं और अंधविश्वासों को समाप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकते है। देश में दहेज–प्रथा के कारण न जाने कितनी ही महिलाओं पर अत्याचार किए जाते है, यहां तक की उनकी हत्या तक कर दी जाती है, महिलाओं के प्रति यौन हिंसा से तो देश त्रस्त है, नब्बे साल की वृद्धाओं से लेकर कुछ दिन की मासूम बच्चियों तक से दुष्कर्म कर उनकी हत्या कर दी जाती है, अंधविश्वास

में जकड़े लोग नरबलि तक दे डालते है, समाज में छुआछूत, ऊँच–नीच और जात–पात की खाई भी बहुत गहरी है, दलितों विशेषकर महिलाओं के साथ अमानवीय व्यवहार की घटनाएं भी आए दिन देखने और सुनने को मिलती रहती है, जो सभ्य समाज के माथे पर कलंक समान है, आतंकवाद के प्रति भी युवाओं में जागृति पैदा करने की आवश्यकता है, भविष्य में देश की लागतार बढ़ती जनसंख्या का पेट भरने के लिए खाद्यान्न की आवश्यकता होगी, कृषि में उत्पादन के स्तर को उन्नत करने से सम्बन्धित योजनाओं में युवाओं को लगाया जा सकता है, इससे जहाँ युवाओं का रोजगार मिलेगा वहीं देश समाज हित में उनका योगदान बढ़ेगा।

स्वामी विवेकानंद जी ने युवाओं का आह्वान करते हुए कठोपनिषद् का एक मंत्र कहा था–

'उन्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।'

अर्थात

उठो, जागों और तब तक मत रूको, जब तक कि
अपने लक्ष्य तक न पहुँच जाओ।।

निःसंदेह युवा देश के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है, युवाओं को देश के विकास के लिए अपना सक्रिय योगदान प्रदान करना चाहिए। युवा उम्र से नहीं उम्र के साथ दृष्टिकोण से भी युवा माने जाते है। युवा अवस्था अद्भुत है इन्हे बेहतर शिक्षा चाहिए। स्वामी विवेकानंद जी के विचार स्मरणीय है– ''शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है जो तुम्हारे मस्तिष्क में भर दिया गया है। और आत्मसात हुए बिना वहीं पड़ रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन निर्माण मनुष्य निर्माण तथा चरित्र निर्माण में सहायक हो। हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बने मानसिक वीर्य बढ़े बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

जिसका जीवन ठहर गया है, जिसके अंदर नया सीखने की नया सोचने की संभावनाएं नहीं है, जिसके अंदर क्राति के बीज नष्ट हो गए है, जिसके मन में देश के प्रगति की, संस्कृति के संरक्षण की समाज को आगे बढ़ाने की सोच करवटे नहीं लेती, जिसकी रगों में देश–भक्ति की उमंग, उल्लास उत्साह का उबाल नहीं आता, जिसके मन में दीन–दुखियों पीड़ितो को देखकर दया, करूणा का सागर नहीं उमड़ता वो 18 वर्ष के है, 20 वर्ष के है, 25 के है या 30 वर्ष के है उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह अपनी युवा–अवस्था को खो चुके है। यदि व्यक्ति 50 वर्ष का है, 60 वर्ष का है या 80 वर्ष का है यदि उसके मन में नित नए विचार है, हौसला है, खतरों से खेलने की हिम्मत है, नित नया सीखने की उत्कंठा है यदि उसके मन में राष्ट्र–निर्माण की देश, धर्म संस्कृति की उत्थान की सेवा–भावना है तो सही मायने में वही युवा है। जो देश को गति और प्रगति दोनों देने में सक्षम है। तभी एक नए भारत का निर्माण संभव है। ''ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियाँ पहले से ही हमारे अंदर है। हम खुद ही है जो अपनी आँखों पर हाथ रख लेते है और कहते है कि कितना अंधेरा है।'' हर व्यक्ति हो अपने अंदर की शक्ति पहचानना है और राष्ट्र–निर्माण में अपना एक सार्थक कदम ही सही मगर आगे बढ़ाना है।

चीर दे हिमालय की चोटी, गंगा की वो धार बन।
कर दे खाक राह की आड़ को, तू कर अपनी ज्वाला ऐसी बुलंद।
कभी तेज कभी मध्यम, कभी हो सरल,
चाहे जो हो तेरी रफ्तार, बस बढ़ता चल।।

सन्दर्भ सूची–

1. पाण्डेय, रामशकल, ''शिक्षा दर्शन'', अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा– चौदहवा संस्करण–2014 / 15 पृष्ठ 107
2. श्रीवास्तव, शिवम, पाल.एस.के., गुप्त लक्ष्मीनाराणः ''शिक्षा के मूल सिद्धान्त'', न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014–15 पृष्ठ 139
3. वही, पृष्ठ–111
4. श्रीवास्तव कांन्तिमोहन– ''प्रगतिशील भारत और शिक्षा'' साहित्य प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण 2006 पृष्ठ 5
5. ''राष्ट्रीय शिक्षा की भारतीय संकल्पना''–संपादक–अतुल कोठारी प्रकाशक–अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् पृष्ठ–9

Concept Mapping: A Constructivist Approach of Learning

Dr. Chaman Kaur
Assistant Professor
Department of B.Ed.
Sri Lal Bahadur Shastri Degree College
Gonda (U.P.)

Abstract

Learning is an inborn tendency of man, however, the truth remains that he acquires some knowledge and skills from his environment directly and some from others. We also accept that learning will be rapid, excellent and long-lasting if the participation of learners is more in the teaching learning process. In order to improve instructional methods carried out in the classroom and improve students' learning, there have always been search for more potential ways of instruction. 'Concept Mapping' has evolved as a useful strategy for leading students towards meaningful learning. Concept mapping requires students to structure their ideas/conceptual understanding, indicating the inter-relatedness of the concepts. Concept mapping is basically a learner's activity and helps learners in examining their own understanding of concepts and in reformulating their concepts. Concept mapping can be used to develop a lesson, summaries a lesson and also to evaluate students learning. The present paper dealt with the meaning, its basis and steps of developing concept mapping.

Key Words: Knowledge, Learning, Concept, Constructivism, Linkage, Concept Mapping

MEANING OF CONCEPT MAPPING:

Concept map is a device for representing the conceptual structure of a subject/discipline in a two-dimensional form which is analogous to a road map. A concept, as defined by Novak, is regularity in objects or events designated by a specific label. Concept maps are diagrammatic representations which show meaningful relationship between concepts in the form of propositions.

Propositions are two or more concept labels linked by words which provide information on relationships or describe connections between concepts. Concepts are generally isolated by circles and connected by lines. Lines are labeled with 'lining words' which describe how the connected concepts are related to each other. Two connected concepts make up a 'prepositional linkage' or a statement about how some piece of the world looks or works.

Concepts are arranged hierarchically, i.e., the most general concept (Super-ordinate) is found at the top of the map and lower concepts (subordinate) are less inclusive then higher ones. 'Cross links' are prepositional linkages that connect different segments

of the concepts hierarchy. They may indicate syntheses of related concepts, a new interpretation of old ideas and some degree of creative thinking.

Concept mapping is seen as a useful strategy for helping students learn about the structure of knowledge and process of knowledge production. Learning about the nature and structure of knowledge helps students to understand how they learn. Knowledge about learning helps to show them how humans construct new knowledge. In contrast to students who learn by rote, students who employ meaningful learning are expected to retain knowledge over an extensive time span and find new related leaning progressively easier.

Concept maps use three types of knowledge: facts, concepts and generalization. It is a learning strategy that was developed first as a research tool to represent learner's prior relevant knowledge and later as a tool to enhance meaningful learning.

THE PURPOSE OF THE STUDY:

The purpose of this research paper is to show that many of the basic concepts of Learning can now be adapted in the present education process that makes it learner centric as suggested in NCF 2005. The essentials of the constructivism for decentralized and autonomous system of education are now getting available in the class room instructions with the use of technology. The educational success can now be founded on the basis of learner's interest and choices, which is creating entirely new processes and mechanisms for learning. The major task is to find the processes and mechanisms of this new style of learning that suit the learner to construct knowledge themselves. Concept Mapping is one of such approach of learning that ensures effective learning along with development of creativity among learners.

OBJECTIVES OF THE STUDY:

1. To make an introspection to the various constructivist approaches of learning.
2. To study in particular the Concept Mapping approach of Learning.
3. To understand how to develop Concept Mapping.

METHODOLOGY:

- This research paper is basically descriptive and analytical in nature. Research was carried on by consulting various related books and related topics.
- Qualitative research approach has been applied in the present study.
- Content analysis method has been undertaken to lead the study in proper direction.
- The data used in it is purely from secondary sources according to the need of this study.

DISCUSSIONS:

After analyzing the Constructivist approaches of learning , NCF 2005 and the present scenario of education in detail the discussion made is classified in following heads:

CONSTRUCTIVIST APPROACHES OF LEARNING:

To ensure quality education in schools and effective teaching, NCERT developed National Curriculum Framework (NCF-2005), which recommends that curriculum should help the learner to become constructors of knowledge. So, there has been a shift from 'teacher-centred approaches' to 'learner-centred approaches' to teaching.

The new approach *or* constructivist approach or learner-centred approach is based on the assumption that knowledge is subjective, contextual and inherently partial. In it, the students construct knowledge in the particular context, in which the individual is operating and is active receivers of knowledge. Here, it is believed that interventions provided in the classrooms can help children to construct knowledge on the basis of their prior knowledge and personal experiences.

Constructivism as general philosophy has a long history and major theorists such as Dewey, Piaget and Vygotsky are constructivist at root. According to constructivism, learning is not a passive receptive process but is, instead, an active meaning-making process required to solve meaningful problems and education system should be characterized by learning to be, learning to learn, learning to do and learning to live together. It recommends learner-centred approaches to achieve these objectives of education.

Constructivism is not an educational fad (fashion), instead, it is a major rethinking about the teaching-learning process. It provides a new 'theory of learning' and a new 'theory of teaching'. This calls for a major shift from 'teacher-centred approach' to 'learner-centred approach' to teaching. In it, the focus is on the learner and the teacher may use the following learner-centred approaches, like:

(A) Experiential
(B) Problem Solving
(C) Investigatory Approach
(D) Concept Mapping
(E) Social Inquiry Approach
(F) Creative Writing

In the present study we will focus on Concept Mapping in detail.

PSYCHOLOGICAL BASIS OF CONCEPT MAPPING:

The use of concept maps as a teaching strategy was first developed by J.D. Novak of Cornell University in the early 1980s. It was derived from Ausubel's learning theory which places central emphasis on the influence of students' prior knowledge on subsequent meaningful learning. According to Ausubel-

"The most important single factor influencing learning is what the learner already knows. Meaningful learning results when a person consciously and explicitly ties new knowledge to relevant concepts they already possess."

Ausubel suggests that when meaningful learning occurs, it produces a series of changes within our entire cognitive structure, modifying existing concepts and forming

new linkage between concepts. This is how meaningful learning becomes lasting and powerful while rote learning is easily forgotten and not easily applied in new learning or problem solving situations.

Taking additional ideas from Ausubel's theory that cognitive structure is organized hierarchically and that most new learning occurs through derivative or correlative subsumption of new concept meaning under existing concept/propositional ideas, Novak developed the idea of hierarchical representation of concept/propositional frameworks called 'cognitive maps' or 'concept maps'

Novak and Symington (1982), found that concept maps were not only a useful tool to represent changes in the knowledge structure of students over time, but also helped them to 'learn how to learn'. They found that concept maps were useful representing knowledge in any discipline and aided in organizing and understanding new subject. Concept mapping has become an important tool to help students learn to learn meaningfully and to help teachers become more effective teachers. Concept maps are useful in helping students to recognize and modify faulty knowledge structures (Novak and Gowin 1989).

STEPS OF DEVELOPING CONCEPT MAPPING:

The steps followed in constructing the concept maps are:

1. The students are given the material pertaining to the lesson/unit and given instructions to read the material and select the key concepts. The Concepts are listed on the black board as they are identified. Discussion is help with the students as to which concept is more important and most inclusive in the lesson/unit.
2. The most inclusive or super-ordinate concept is placed at the top. The most general and inclusive concepts are listed next, working through the first list until all concepts are rank ordered.
3. Students are asked to help in choosing good linking words to form the propositions shown by the line on the map.
4. Cross links between concepts in one section of the map and concepts in another part of the concept tree are made with the help of students. The concepts are either circles or put in small boxes.
5. Maps are reconstructed if they have poor symmetry or are poorly clustered.

Since concept mapping is a relatively new strategy, initially teachers must provide guidance to the students for developing their concept maps. The teacher may draw concept maps on the black board with the help of students. Thereafter, students may draw concept maps of their own. The concept maps may be evaluated by students themselves and also by the peers.

USES OF CONCEPT MAPPING:

The process of constructing a concept map requires one to think in multiple directions and to switch back and forth between different levels of abstraction. In

attempting to identify the key and associated concepts of a particular topic or sub-topic, one will usually acquire a deeper understanding of the topic and clarification of any prior misconceptions. Concepts mapping can be used for several purposes like-

- To generate new ideas (brain storming).
- To design complex structures (long texts can be reduced in short length).
- To communicate complex ideas.
- To aid learning by explicitly integrating new and old learning.
- To assess understanding or diagnose misunderstanding of a concept.
- Concept mapping done in groups also develops certain social skills, and values like tolerance, respect for others' views, group spirit, cooperation, discussion abilities, open mindedness etc.

CONCLUSIONS:

Concept mapping is a more recent development that is widely used as a constructivist learning model. It has been used as an advance organizer to focus students' attention and guide them along to seeing the bigger picture and for use as mental scaffolding for organizing their thoughts and discoveries.

Concept mapping demands clarity of meaning and integration of crucial details. Since success is evident in the significant and substantial gains in students' achievement and concept attainment of students, teachers should attempt to use this as a part of their instructional methods in classroom teaching. The purpose behind the use of this strategy should be to provide workable strategies to help students learn how to learn.

References

1. Ausuble, D.P. (1963) 'The Psychology of meaningful verbal learning', Grune and Stratton. New York.
2. Symington, D. and Novak, J.D. (1982) 'Teaching children how to learn', Educational Magazine.
3. Novak, J.D. and Bob Gowin (1984), 'Learning how to learn', Cambridge University Press. USA
4. NCERT (2006) Constructivist Approaches to Teaching and learning.
5. Sharma, R.A. (2010) Educational Technology, International Publishing House Meerut.
6. Pathak, P.D.(2011), '*Shiksha Manovigyan'* Agarwal Publications, Agra
7. Pal, Surendra(2017), 'Assesment for Learning' Arjun Publishing House, New Delhi.
8. Lal, Raman Behari & Palod, Sunita(2018), 'Assessment for Learning' R. Lall Book Depot, Meerut.

****

Teacher Empowerment: Today's Need

Dr. Shikha Verma
Associate professor
Department of B. Ed.
K. S. Saket P. G. College, Ayodhya (U.P.)

Abstract

The teacher's role has always been important in the educational process but rapidly changing social, economic, political conditions have affected the teaching-learning process and the status of the teacher in today's era of globalization, the activities of teacher empowerment can provide a new ground for continuous creation in the conditions of learning and for this to develop a useful and inspiring direction. Teacher empowerment is not an event rather it is the process in which the teacher's ability, imagination, ability and control, management, self-assessment and self-capacity are enhanced as per the expectations of the changed contexts of education. The issue of teacher empowerment has timely importance, which will emphasize to make the teacher creative, imaginative, free, dynamic. He will be the creator of such an educational system in which a system of self-instruction, self-education and self-assessment can be developed.

The sole purpose of education is to transform the society, nation and the world through empowering the individual. In today's global age, the concept of education is becoming very complex and challenging. Knowledge, skills, aptitude and values are the basic foundation of human life. To achieve this, many thinkers, educationists and social reformers have been presenting different designs of education from time to time. Gandhiji's basic education, Sri Aurobindo's education, Tagore's innovative use of Shantiniketan and the establishment of Gurukul in the early periods are obvious examples. The teacher has an important role in all of these.

The teacher's role has always been important in the educational process, but it is bound to change over time. Rapidly changing social, economic, political conditions have affected the teaching-learning process and the status of the teacher who plays a major role in it. To reconcile the changing circumstances, their position and role is strongly demanding a change. Therefore, the issue of effectiveness of teaching and teachers has become 'universal' and not linked to any particular country. It is very important to describe the issue of teacher empowerment in the modern context, so that in today's era of globalization, the activities of teacher empowerment can provide a new ground for continuous creation in the conditions of learning and for this to develop a useful and inspiring direction.

Teacher Empowerment - Meaning and Concepts

Teacher empowerment is a positive thinking developed for the upliftment of the teachers. It is a complex multidimensional concept. Teacher empowerment is not an event rather it is the process in which the teacher's ability, imagination, ability and control,

management, self-assessment and self-capacity are enhanced as per the expectations of the changed contexts of education. Real empowerment enhances the qualifications of teachers. It is a bipolar process that enables the teacher to fully identify himself and know his abilities. Through the process of empowerment, a teacher can ensure its participation in study subject matter, teaching process and management. Empowerment refers to developing strength and efficiency, so that the individual's participation can further be developed. It is a qualitative concept and a process rather than a final product. It emerges from the process of development. With the emergence of the concept of Self regulated Learning and Multi Learning, special attention was paid to teaching effectiveness and teacher empowerment.

Teacher Empowerment in the Current Context

In the last two decades, new insights have developed through academic researches. In the 1960s, it has come to light from the researches of Coleman and Christophe Jackson that whether the role of schools is important or not, but the role of teacher is important in influencing the learning of students. On the basis of research of Jarey, Brophy and Tomas Good (1986), this confusion has been proved to be untrue that teachers do not have any importance in the learning of students. Subsequently Sanders and Horn (1994), Wright, Horn and Sanders (1997) found in their studies that classroom teachers have a greater influence on students' performance and that the most important factor influencing student learning is the teacher. Also, there is variation in the effectiveness of teachers. Effective teachers are effective for students of all types of achievement levels, despite individual variation in the classroom. Conversely, students studying under the patronage of ineffective teachers show unsatisfactory progress.

Based on the above researches, education has become student-centered rather than teacher-centered at the present time. In an ideal education system, the teacher's role is that of the administrator of learning situations, who arranges according to the list of girl students, aptitude, qualification, entry, behavior and ability. In this system, the teacher is expected to become a source of inspiration rather than the role of a director. The role of the student is that of investigator, investigator and a wanderer who finds his own path.

In this way, the issue of teacher empowerment has timely importance, which will emphasize to make the teacher creative, imaginative, free, dynamic. He will be the creator of such an educational system in which a system of self-instruction, self-education and self-assessment can be developed.

Why Teacher Empowerment Is Necessary

No demand is justified without justifying it. Therefore, the teacher class also has to clarify what conditions and needs it wants to fulfill. In consultation with various scholars, several facts emerge in favor of empowerment.

1. For a strong position in society:

Although the teacher enjoys a prestigious position in the society, yet the impact of this reputation on the society has been negligible. In today's global, information technology and technology era, the role and position of teacher in society is becoming secondary. Today, there is a great need of empowerment for the teacher to maintain his strong and prestigious identity in the society.

2. For greater autonomy

For the best performance of any person, it is necessary that they work under their own favorable circumstances. In our country, the teacher class has hundreds of responsibilities but autonomy is not even a little. In such a situation, the teacher is not able to discharge his responsibility satisfactorily on his personal skills. Therefore, teacher empowerment is being demanded for greater autonomy.

3. For confidence

In the era of globalization and information technology, two important factors of the 21st century, the teacher class has lost its confidence while confidence is the first condition for teaching work. If a class makes you feel disabled, it will surely lack confidence and will not be able to perform its duties efficiently. Therefore, there is a need to think deeply about empowerment for the recovery of confidence.

4. For functionality and efficiency

Since the teacher class has been a source of inspiration for the society, it is very important to be functional and efficient. So that he can set competent example in the society and make his significant contribution in the upliftment of the society. There is also pressure on this class to prove its efficiency by giving better results to the society, so this class also wants its empowerment to achieve better conditions of activity and efficiency.

5. For self control

The state of control is the aspect of personality on the basis of which a person attributes the results of his or her work to external or internal factors. The state of control is of two types - first, one in which the person attributes the result of his act to fate, coincidence, manager or any other person.

Second, the one in which a person attributes the results of his work to his effort, his strategy, or method of action. Based on research, it has been proved that effective teachers have the status of another type of control. But in the present time, the teacher class does not consider themselves responsible for the failure of their work, and considers the policies related to the system and the students, so teacher empowerment is being demanded for preparing the second class teacher.

Is the disability anywhere self-made?

The concept of teacher empowerment was not even mentioned till some time ago, what happened in these years that despite the progress in the field of education, there was a demand for teacher empowerment. Is the teacher really disabled? Or does he want to prove himself to be disabled by getting caught in the maya trap of Indian politics and

demands additional facilities from the state and central government? Is he really looking for his role in the era of globalization? In searching for answers to these questions, the fact also emerged that somewhere the teachers themselves is responsible for his disabilities. The reasons for this are as follows-

1. Lack of knowledge

One of the main reason for the disability of the teacher class is his retirement from self-education. Due to this, he is unaware of the invention and innovation happening in the field of education. Without self-education and new knowledge, there is a lack of creativity in it. Today, the teacher class is going on a worn-out rut instead of finding new ways, creating new standards and norms and creating new ideas. This makes his classroom communication ineffective and monotonous. As a result, his confidence wanes. This lack of confidence leads to his disability.

2. Lack of solidarity

Although there are many teachers' organizations, the leaders of these organizations, due to being stuck in politics, hinder the unity of the teacher class. In the absence of unity, those organizations are not able to put positive pressure on the government, due to this, many problems of teachers such as the problem of regulation, problem of salary revision, problem of service conditions, etc. are not solved and they become a victim of frustration.

3. Difference in economic condition

After the Sixth Pay Commission, certainly the salary of the teacher class is reasonably large, but the benefit of the sixth salary is given only to the teachers of government and aided schools and colleges. Thus our country is full of private and self funded courses. Teachers who teach these courses are still underweight. Such a difference in the salaries of teachers of two classes teaching at the same level creates a hurdle in giving their best to teachers of other classes.

Teacher empowerment measures

It will be expedient to discuss measures for teacher empowerment after knowing the need for teacher empowerment and the reasons for disarmament.

1. Development of educational awareness in society

Today, awareness about education has increased in urban areas, due to which the need, importance and prestige of the teacher has also increased. But to strengthen the teacher class, such awareness should be everywhere in the country. This is possible only through the spread of education in rural areas. Only then will the position and role of the teacher in the society be strengthened.

2.Lack of control of bureaucracy

Excessive bureaucratic control also impedes the efficiency, functioning, autonomy and empowerment of the teacher class. For the development of self-respect of teachers, it is necessary to give them more autonomy for the development of creativity, to increase their education effectiveness. It is a harsh truth that under the control of bureaucracy, the

teacher often finds himself helpless in front of a clerk. In such a situation, the teacher can be empowered by lack of control.

3. Improvement of education system

In order to make imaginative, developing and effective challenges, inconsistencies and new expectations related to the changes that are coming in the context of global learning and teaching learning in information technology, there is a need to improve education system. Teachers will be able to play their effective role only if there is a comprehensive improvement in the purpose of education, curriculum, teaching methods, assessment methods.

4. Development of a sense of self-study

In today's changing times, the teacher has to think that he is a student along with being a teacher; he should expand his range of thinking and make his teaching effective, his knowledge, planning, instruction, communication, management and evaluation. The techniques should be assimilated so that it can merge its steps with time. Today, there is a need that teachers constantly ponder, contemplate their situation and try to improve it progressively.

5. Creation of strong teacher organization

The International Commission for Education has presented a chapter on the organization in its report 'Adhigam Interdhani Nidhi', so it is very important to have a positive organization of teachers for teacher empowerment. Only through the organization, teachers will be able to make a positive impact on policy making by the state and can make policies favorable to them. Through this organization, they will be able to maintain their reputation in the society.

6. Improvement in teacher education

For teacher empowerment, it is necessary that its foundation be strengthened first. For this, teacher education has to be made timely and effective. For this, technical knowledge and pedagogy will have to be harmoniously used. Today, the biggest obstacle to teacher empowerment - 'teacher deferment' is not the synergy between the teacher's cognitive side and the technical side. Therefore, it is very important to develop both cognitive and technical aspects of future teachers through teacher education. This will increase the confidence of teachers and can be increased towards empowerment with confidence.

7. Empowerment by various institutions

Teacher is the biggest investment for the society, this thing should be understood by the society and the state. Efforts should be made towards teacher empowerment by various programs and institutions. Programs like Sarva Shiksha Abhiyan, Life Skills etc. and institutions like National Council for Teacher Education can do important work in this direction. The government should also make concerted efforts towards teacher empowerment. The process of empowerment should not be limited to a few institutions,

but should also be adopted at national, state level, district level and local level. The broad role of the teacher in determining the curriculum, curriculum, supporting educational material, text books and educational policy, well planned refresher programs etc. can also be helpful in the efficiency and empowerment of the teacher.

It is clear that the future of India lies in the future of its teachers. Without a strong teacher class, the foundation of India's future cannot be imagined. Therefore, it is the responsibility of every university, higher education institute, education college to provide a dynamic and concrete form to the process of teacher empowerment.

References-

1. Agrawal, J. C. (2005), Shiksha Mein Javabdehi, Vinod Pustak Mandir, Agra.
2. Mukhopadhyay, M. (2005), Total Quality Management In Education, Nepa, Delhi.
3. Ghosh A. K. (2001), Teachers Accountability, University News, March.
4. Baghola, G. (2000), Aise Hon Shikshak, Pavan offset, New Delhi.
5. Blaze, Joseph (2003), Impairing Teachers, Sage Publishers Los Angeles.

परिवहन एवं कृषि संसाधन

डॉ0 खेदू राम यादव
असिस्टेन्ट प्रोफेसर–भूगोल,
जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महराजगंज

कालांतर में जिस प्रकार पक्षियाँ भोजन प्राप्त करने के लिए उड़ना तथा मछलियाँ भोजन प्राप्त करने के लिए तैरना सीखा उसी प्रकार मानव भोजन तथा आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति करने के लिए थल, जल, वायु मार्गों की खोज की ऐसा माना जाता है कि पूर्व मानव, मरुस्थल घास का मैदान एवं बर्फीले क्षेत्रों में बिना पहिये के गाड़ी का प्रयोग तंबू तथा अन्य सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए ले जाने के लिए किया होगा जो परिवहन की प्रारंभिक सामान्य प्रविधि है। 3000 ई0 पूर्व में राजाओं के शवों को भी बैलगाड़ी द्वारा ढ़ोया जाता था। प्रागैतिहासिक काल के परिवहन के विषय में पत्थर, पट्टी, भित्ति रेखा, चित्र आदि के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। 3000 ईसा पू0 सुमेरकालीन संस्कृत में चक्रवाहनों का चित्रण मिलता है, जो यह स्पष्ट करता है कि इस काल के पूर्व ही पहिये वाली गाड़ी का आविष्कार कर लिया गया था। उत्तरी सीरिया में इस प्रकार के प्रमाण प्राप्त हुए है। सिंघु घाटी के सभ्यता के अवशेष से भी यह स्पष्ट होता है कि इस काल में पहिये वाली गाड़ी का प्रयोग करते थें। 300 ईसा पूर्व तक इनके पहिये ठोस लकड़ी या पत्थर के होते थें, इसके बाद तीन लकड़ी के दंडो की सहायता से क्लैक को जोड़कर चमड़े का हाल चढ़ा देते थें। प्रारम्भ में इस गाड़ी को मनुष्य खींचता था, परन्तु बाद में पशुओं का प्रयोग किया गया, इन्ही गाड़ियों के संकल्पना के आधार पर वर्तमान तीब्रगामी धरातल पर गति करने वाले परिवहनों का निर्माण हुआ। मानव अपना स्थाई निवासी सर्वप्रथम नदी, समुद्र तथा झील के किनारे बनाया जहाँ से जल परिवहन के आविष्कार की प्रेरणा मिली। मनुष्य ने प्रारम्भ में लकड़ी की छोटी–छोटी डोंगी बनाया जिससे तट से थोड़ी दूर तक जल में यात्रा कर अपनी आवश्यकता की पूर्ति किया होगा। समय के साथ इनके आकार में परिवर्तन होने लगा होगा, ऐसा माना जाता है कि 3500 ईसा पूर्व तक मानव ने बड़ी–बड़ी नौकाओं का निर्माण कर लिया था। बाद में इनका आकार काफी बड़ा और सुंदर हो गया था। लोग दूर–दूर तक इन नौकाओं द्वारा यात्रा करने लगे थें। तटवर्तीय क्षेत्रों को आवश्यक सामाग्री पहुँचाते थें तथा वहाँ से आवश्यक उपयोग की वस्तुएँ ले आते थें, यहीं से व्यापारिक स्वरूप भी विकसित हुआ होगा, लेकिन जब मानव ने लोहा का ज्ञान प्राप्त किया तो इस दिशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। नौकाएं लोहे की बनने लगीं, इनके संचालन में मानव शक्ति का प्रयोग किया जाना शुरू हो गया था, लेकिन गति बहुत मंद होती थी जिससे तूफान के समय अपनी रक्षा नहीं कर पाते थें। इन्हीं कठिनाईयों के कारण निरंतर इसमें संसोधन किया जाता रहा तथा वर्तमान जलयानों का स्वरूप प्राप्त कर लिया। मानव संस्कृति के ऐतिहासिक विश्लेषणों में परिवहन इतिहास का विश्लेषण करना आवश्यक है। वहीं एक प्रविधि है जिसके द्वारा मानव अपने संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास किया। ब्रूश के अनुसार – परिवहन तथा संचार के साधन धरातल के भौतिक स्वरूप में परिवर्तन करते हैं, साथ ही साथ जनसंख्या वितरण तथा विकास को भी प्रभावित करते हैं। परिवहन का विकास मानव की सूक्ष्म केन्द्र से निकटवर्तीय क्षेत्रों तक सम्बन्धित कर जोड़ दिया।

ज्यों–ज्यों परिवहन का विकास होता गया त्यों–त्यों मानव का क्षेत्र विकसित होता गया। साथ ही साथ नवीन प्रविधियों का आविष्कार एवं परिवहन के साधनों में उत्कृष्टता आती रही तथा मानव संस्कृति का स्वरूप निरंतर बदलता गया तथा वर्तमान विकसित स्वरूप को प्राप्त कर लिया। परिवहन तंत्र में मार्ग, वाहन तथा चालक शक्ति तीनों का महत्व होता है। प्रगैतिहासिक काल से वर्तमान तक इन तीनों में निरंतर नवीन प्रविधियों का आविष्कार हुआ तथा इनका स्वरूप परिवर्तित हुआ पगदंडी, शकट पथ, कच्चा मार्ग, पक्का मार्ग, रेलमार्ग आदि पथ के रूप में मानव, पशु तथा कोयला, पेट्रोल, जल विद्युत आदि शक्ति के स्वरूप तथा पहिया रहित गाड़ी, दो पहियें की गाड़ी, चार पहिये की गाड़ी, लकड़ी की गाड़ी, लोहे की गाड़ी आदि वाहन के स्वरूप मानव संस्कृति तथा प्रविधि के साथ विकसित हुआ। मानव अपने पूर्व संघर्षों से ज्यों ही परिवहन के साधन को खोज निकाला त्यों ही इसकी संस्कृति गतिशील हो उठी, नवीन प्रविधियों का आविष्कार हुआ, परिवहन में उत्कृष्टता आयी तथा वर्तमान संस्कृति भूदृष्य सृजित हुए। परिवहन को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। (1) स्थल परिवहन (2) जल परिवहन (3) वायु परिवहन।

(1) स्थल परिवहन :–स्थल परिवहन का जो स्वरूप देखने को मिल रहा है वह अतीत से वर्तमान तक अनेक नवीन प्रविधियों के आविष्कार के फलस्वरूप हुआ है। नवपाषाण काल में मानव ऊँचे–नीचे धरातल पर शकट का प्रयोग करता था। 3000 ईसा पूर्व तक बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी आदि का विकास कर लिया था। यातायात के इन साधनों के विकास के अनेक मार्गों की खोज भी होती गयी। मध्यकाल तक मध्य एशिया, दक्षिणी पश्चिमी एशिया, पूर्वी यूरोप तक कारवाँ मार्ग द्वारा एक दूसरे से संपर्क स्थापित कर लिए थें। धीरे–धीरे अनके प्रविधियों का आविष्कार हुआ जैसे– रेल परिवहन, सड़क परिवहन, वायु परिवहन आदि।

(2) जल परिवहन :–इसका वर्तमान स्वरूप भी मानव की कठिन परिश्रम तथा अनवरत संघर्ष का परिणाम है। सागर, नदी, झीले आदि मानव को जल परिवहन के लिए प्रेरित किये, इसने प्रारम्भ में घास, लकड़ी के लट्ठों, चमड़े की खोल आदि से नौका तैयार कर लिया, बाद में लकड़ी की बड़ी–बड़ी नौका तैयार की गयी तथा इसमें पाल बाँधकर वायु शक्ति द्वारा चलाने लगें। खनिज संसाधनों की खोज के फलस्वरूप शक्ति संचालित नौकाओं का निर्माण किया गया।

(3) वायु परिवहन :–इसके विकास का भी इतिहास प्रारम्भ में वैज्ञानिकों ने गुब्बारों की सहायता से उड़ने का प्रयास किया। इस दिशा में निरंतर अनुसंधान कार्य होते रहे, फलतः वर्तमान वायु परिवहन विकसित हुआ। कृषि संसाधन–कालांतर से वर्तमान तक मानव जैसे–जैसे पगदंडी रास्तों से अपनी यात्रा शुरू किया, जो वर्तमान में स्थल, जल, वायु परिवहन तक देखने को मिल रहा है। मानव जंगलों में धीरे–धीरे जंगलों को काटकर छोटे–छोटे खेतों का विस्तार किया, जंगली फलों को खाया और उनके बीजों को अपने खेतों में उगाया जो बाद में संचित कर पुनः उन बीजों को बड़े पैमाने पर उगाने का कार्य किया और धीरे–धीरे जंगलों को काटकर अपने खेतों का विस्तार किया। जब उत्पादन अधिक होने लगा तब उन खाद्य पदार्थों को छोटे–छोटे हॉट बाजारों में अपने पालतू पशुओं के द्वारा खींची गयी बैलगाड़ी से बाजारों तक ले जाने लगा, संभवतः यहीं से मानव मस्तिष्क में परिवहन और कृषि को जोड़कर आगे बढ़ने की कला विकसित हुई होगी, जिससे मानव कृषि की उत्पादकता में वृद्धि की कला विकसित हुई होगी, जो वर्तमान में परिवहन के माध्यम से बढ़ती गयी। मनुष्य ने आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक में विकास, प्रगति, प्रौद्योगिकी, रासायनिक खादों के उत्पादन तथा उपयोग में वृद्धि, सिंचाई के साधनों एवं सुविधाओं में वृद्धि तथा विस्तार, अधिक उत्पादन वाले

बीजों के विकास आदि के माध्यम से कृषि में पर्याप्त विस्तार एवं विकास किया है तथा निरंतर बढ़ती मानव जनसंख्या के कारण बढ़ती खाद्यान्नों की माँग की पूर्ति की जो परिवहन के साधनों से ही संभव हुआ, जैसाकि देखा जाय तो उत्तर भारत का चावल पूरे भारत सहित विदेशों में परिवहन के माध्यम से ही निर्यात किया जाता है। इसी तरह हिमाँचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश के पहाड़ी भागों में सेब की बृहद कृषि की जाती है। हिमाँचल प्रदेश में स्वतंत्रता के बाद सेब की खेती में तेजी से विस्तार हुआ। वर्तमान समय मे हिमाँचल प्रदेश देश की सकल सेब उत्पादन का एक तिहाई भाग उत्पन्न करता है। जिससे हिमाँचल प्रदेश के किसानों की आर्थिक स्थिति में अत्यधिक सुधार हुआ, लेकिन यदि विकसित परिवहन के साधन देश में न होते तो उत्पादित सेबों को उपभोक्ता तक समय से पहुँचाना संभव नहीं था जिसका परिणाम यह होता कि किसान सेब की खेती छोड़ने को मजबूर हो जाता। लेकिन आज प्रतिवर्ष धान, गेंहूँ, गन्ना, चुकन्दर, सेब, मूँगफली, तिलहन–दलहन, आलू, मटर, आम, अंगूर, अनार, काजू, बादाम, अखरोट, पिस्ता, नारियल आदि विभिन्न तरह के कृषि उत्पादों को कहीं न कहीं से परिवहन के साधनों के द्वारा आशातीत सहयोग मिल रहा है, जिससे विभिन्न क्षेत्रों का किसान अपने उत्पादन का उचित मूल्य बड़ी–बड़ी मंडियों में ले जाकर पाता है और हर किसान कहीं न कहीं से परिवहन के साधनों के द्वारा ही अपने कृषि उत्पादों को समय से बाजार तक पहुँचा कर कच्ची उत्पाद को नष्ट होने से बचाता है। जिस देश में उच्च कोटि के परिवहन के साधन की व्यवस्था नहीं होगी निश्चय ही वह देश कृषि समृद्ध देश नहीं बन सकता। कृषि समृद्धता के लिए जरूरी है कि उच्च कोटि के कृषियंत्र, जलवायु, पूँजी, श्रम के साथ उच्च कोटि का परिवहन संसाधन होना जरूरी है।

स्रोत :–

1. प्रसाद, गायत्री, सांस्कृतिक भूगोल, 1997 शारदा पुस्तक भवन 11, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद , Page. No-113।
2. सिंह सविन्द्र, पर्यावरण भूगोल, 1997 प्रयाग पुस्तक भवन 20–ए, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद , Page. No-356